समकालीन साहित्य, संस्कृति, कला और विचार का मासिक

उत्तर प्रदेश

मार्च—2024, वर्ष 49

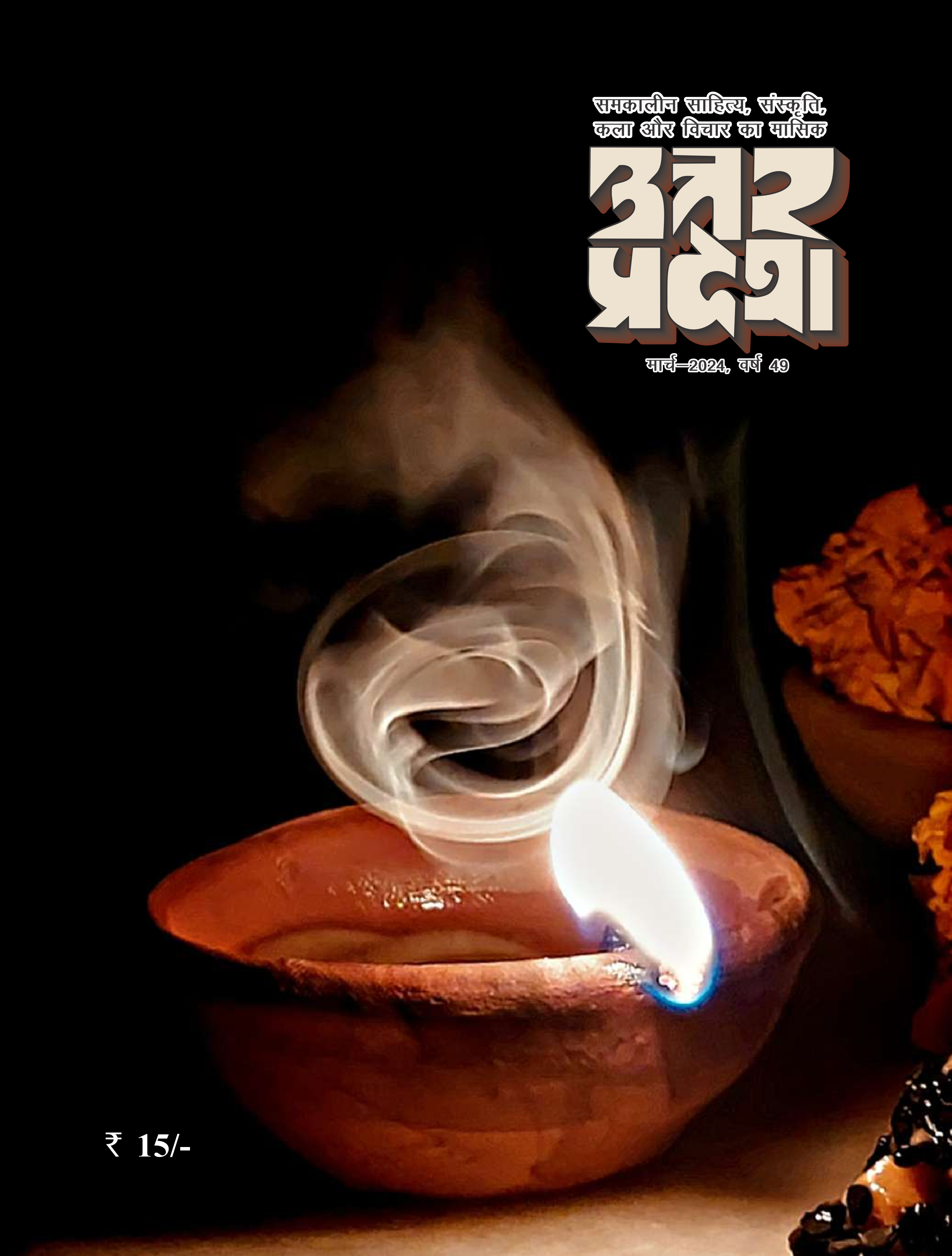

₹ 15/-

राजेन्द्र सिंह राही का गीत

चेतना के पंथ को हम, नित नया विस्तार दें।
हो भरा सद्भाव जिसमें, वह सरस संसार दें।।

पड़ रहे मन पर फफोले, वस्तुओं की चाह से।
दिग्भ्रमित होती हमारी, पीढ़ियाँ छद्म राह से।।
उड़ सके नीले गगन में, सत्य का आधार दें।
चेतना के पंथ को हम, नित नया विस्तार दें।।

हो रहा निर्मित हमारा, जो नया परिवेश है।
लग गया इससे बदलने, आदमी का वेश है।।
दुर्गुणों से दूर रहकर, हम मधुर व्यवहार दें।
चेतना के पंथ को हम, नित नया विस्तार दें।।

साँकलों में बँध रही है, प्रेम की संभावना।
कर रही है एकता की, भावना को यह मना।।
जो करे सम्मान सबका, वह सहज उद्गार दें।
चेतना के पंथ को हम, नित नया विस्तार दें।।

हो हमेशा भव्यताओं, का रिवाजों में वरण।
सभ्यता की शिष्टता से, जगमगाये आचरण।।
मानवी संवेदना को, प्यार दें सत्कार दें।
चेतना के पंथ को हम, नित नया विस्तार दें।।

चेतना के पंथ को हम, नित नया विस्तार दें।
हो भरा सद्भाव जिसमें, वह सरस संसार दें।।

◆

पता : ग्राम व पोस्ट–समरूपुर, जनपद–बस्ती (उ.प्र.)
मो. : 9918779472

अनुक्रम

कलाओं के संदर्भ में

- परंपरा, प्रयोग और नवाचार ❑ निर्मला डोसी / 3

कहानी

- जिंदगी मिले, ऐसी न दुबारा ❑ आनन्द प्रकाश त्रिपाठी / 7
- व्यथा कथा ❑ महेन्द्र भीष्म / 16
- एक कतरा हंसी ❑ आशा पाण्डेय / 21

कविताएँ

- राजेन्द्र सिंह राही का गीत ❑ आवरण–2
- सुशान्त सुप्रिय की कविता ❑ आवरण–3
- प्रगति त्रिपाठी की कविताएँ / 27
- समरपाल सिंह की दो कविताएँ / 29

पुस्तक समीक्षा

- फ़िराक़ की शायरी ❑ शकील सिद्‌दीकी / 31

उत्तर प्रदेश

❑ वर्ष 49 ❑ अंक 61
❑ मार्च, 2024

संरक्षक एवं मार्गदर्शक : ❑ **संजय प्रसाद**
प्रमुख सचिव, सूचना

प्रकाशक एवं स्वत्वाधिकारी : ❑ **शिशिर**
सूचना निदेशक, उत्तर प्रदेश

सम्पादकीय परामर्श : ❑ **अंशुमान राम त्रिपाठी**
अपर निदेशक, सूचना
❑ **डॉ. मधु ताम्बे**
उपनिदेशक, सूचना
❑ **डॉ. जितेन्द्र प्रताप सिंह**
सहा. निदेशक, सूचना

अतिथि सम्पादक : ❑ **कुमकुम शर्मा**

प्रभारी सम्पादक : ❑ **दिनेश कुमार गुप्ता**

आवरण : **अन्तरिक्ष**

भीतरी रेखांकन : **रीतिका**

सम्पादकीय संपर्क : सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, पं. दीनदयाल उपाध्याय सूचना परिसर, पार्क रोड, लखनऊ
मो. : 8960000962, 9412674759
ईमेल : upmasik@gmail.com

दूरभाष : कार्यालय : ई.पी.ए.बी.एक्स 0522–2239132–33, 2236198, 2239011

पत्रिका information.up.nic.in **वेबसाइट पर उपलब्ध है।**

❑ **एक प्रति का मूल्य** : पंद्रह रुपये
❑ **वार्षिक सदस्यता** : एक सौ अस्सी रुपये
❑ **द्विवार्षिक सदस्यता** : तीन सौ साठ रूपये
❑ **त्रैवार्षिक सदस्यता** : पांच सौ चालीस रुपये

प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे मासिक पत्रिका 'उत्तर प्रदेश' और सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. लखनऊ का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

—सम्पादक

आवर्तन

औरत हूं मगर सूरत–ए–कोहसार खड़ी हूँ
इक सच के तहफ्फुज के लिए सबसे लड़ी हूँ।
वो मुझसे सितारों का पता पूछ रहा है,
पत्थर की तरह जिसकी अंगूठी में जड़ी हूँ
अल्फाज़ न आवाज़ हमराज़ न दम–साज़,
ये कैसे दोराहे पे मैं, ख़ामोश खड़ी हूँ।
इस दश्त–ए–बला में न समझ ख़ुद को अकेला
मैं चोब की सूरत तिरे खेमे में गड़ी हूँ।
फूलों पे बरसती हूं कभी सूरत–ए–शबनम
बदली हुई रूत में कभी सावन की झड़ी हूँ।

–फ़रहत ज़ाहिद

मार्च के महीने की 8 तारीख एक ऐसी ज़िन्दा तारीख़ है। जिस दिन को दुनिया भर की महिलाएं महिला दिवस के रूप में मनाती हैं यह दिन हमें याद दिलाता है अपने अधिकारों, के बारे में। वर्षों के अज्ञान और अशिक्षा की वजह से स्त्री का शोषण हर स्तर पर किया गया है । आज से बहुत समय पहले सावित्री बाई फुले ने इसे पहचान लिया था, तभी तो उन्होंने कहा था, "हमारे जानी दुश्मन का नाम है, अज्ञान। उसे धर दबोचो। मजबूती से पकड़कर पीटो और उसे जीवन से भगा दो।"

क्लारा जेटकिन एक जर्मन मार्क्सवादी सिद्धांतकार, कम्युनिस्ट कार्यकर्ता और महिलाओं के अधिकारों की वकालत करने वाली बहादुर महिला थीं। क्लारा का जन्म 05 जुलाई 1851 को जर्मनी में हुआ था। 1910 में क्लारा जेटकिन ने अन्तरराष्ट्रीय महिला दिवस की बुनियाद रखी थी। कामगार महिलाओं के आन्दोलन से महिला दिवस की शुरूआत हुई थी, जिसे बाद में संयुक्त राष्ट्र ने भी सालाना जश्न के तौर पर मान्यता दी। इस दिन को ख़ास बनाने की शुरूआत 1908 में तब हुई, जब करीब पंद्रह हजार महिलाओं ने न्यूयॉर्क शहर में एक परेड निकाली। उस समय महिलाओं की मांग थी कि उनके काम के घंटे कम हों, तनख्वाह अच्छी मिले और महिलाओं को वोट डालने का हक भी मिले। इस अन्तरराष्ट्रीय महिला दिवस को मनाने का सुझाव, 1910 में डेनमार्क की राजधानी कोपेनहेगन में कामकाजी महिलाओं के अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन में दिया गया था। महिला दिवस आज भी मनाया जाता है।इसका मूल उद्देश्य श्रमजीवी महिलाओं को सशक्त बनाना है।

बदलते समय के साथ महिलाओं की स्थिति में बहुत परिवर्तन हुआ है। शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं ने अभूतपूर्व सफलता हासिल की है लेकिन आज भी बहुत–सी पढ़ी–लिखी महिलाएं पुरूष के वर्चस्व का शिकार हो रही हैं। हर लड़की को मानसिक रूप से आत्मनिर्भर और सशक्त बनने की ज़रूरत है ताकि कोई भी उसका शोषण न कर सके। परिवारों में लड़कियों के साथ लड़कों को भी संस्कारवान बनाना होगा ताकि जब वे समाज में बाहर जायं तो सभ्य व्यवहार करें। समाज में स्त्रियों का सुरक्षित होना शिक्षित होना अति आवश्यक है। लड़किया तभी सुरक्षित होंगी जब वे शिक्षित होंगी और पुरूष संस्कार वान होंगे। हमारी लड़कियां जुझारू हैं। परिश्रमी हैं, और भविष्य में बहुत कुछ करना चाहती हैं। इस बार फ्रांस में हुआ कान्स फिल्म फेस्टिवेल बेहद खास रहा क्योंकि इसमें उत्तर प्रदेश के बागपत जिले के गांव बरनाला की तेईस साल की लड़की नैन्सी त्यागी ने सफलता के झंडे गाड़ दिए इसे यहां ब्रूट एजेन्सी की तरफ से भेजा गया था। यहां इसकी पूरी कहानी का उल्लेख करना आज आवश्यक लग रहा है ताकि हमारी बेटियाँ निराश न हों, वे समझें कि उनमें अपार क्षमताएं हैं और वे बहुत कुछ कर सकती हैं। नैन्सी बेहद गरीब परिवार में जन्मी है उसकी मां एक फैक्ट्री में काम करती है और पिता टी. वी. मैकेनिक हैं। नैन्सी ने बचपन से ही मां की हाड़तोड़ मेहनत देखी थी और वह उनकी मदद करना चाहती थी अतः उसने शौकिया कपड़े सिलने शुरू किये। वह सैलिब्रिटीज के कपड़े देखकर सिलती थी और इन्स्ट्राग्राम पर लगाती थी। यहीं से इसके फॉलोअर्स बढ़े। नैन्सी ने कान्स में भी जो गुलाबी गाउन पहना है वह उसने स्वयं ही सिला है। वह पूरे आत्मविश्वास के साथ हिन्दी में बोलती है। आज वह चर्चित मीडिया और फैशन इन्फ्लुएंसर है। नैन्सी गरीब परिवारों की तमाम बेटियों के लिए एक प्रेरणा स्रोत है। इस अंक में निर्मला डोसी का आलेख, आनन्द प्रकाश त्रिपाठी, महेन्द्र भीष्म, आशा पाण्डेय की कहानियाँ, प्रगति त्रिपाठी, समरपाल सिंह, राजेन्द्र सिंह राही, सुशान्त सुप्रिय की कविताएँ तथा शकील सिद्दीकी की पुस्तक समीक्षा है।

अपनी प्रतिक्रियाओं से अवगत कराते रहियेगा

कुमकुम शर्मा

परंपरा, प्रयोग और नवाचार

❑ निर्मला डोसी

कलाएं होती क्या है... उनका जन्म क्यों होता है। इस मूलभूत तथ्य पर चिंतन करें तो हम पाएंगे कि कलाओं का जन्म भाषा के जन्म से भी बहुत पहले हुआ था। कुछ कलाओं की जड़ें तो इतनी गहरी हैं जितनी मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति की छटपटाहट। उसी छटपटाहट और अंतस की बेचैनी से जन्मी थीं कलाएं। प्रस्तर–तराशी हो या चित्रकारी, गीत हो या संगीत, साहित्य हो या नाट्यकर्म, दस्तकारी हो या शिल्पकारी या फिर अन्य प्रकार की कलाएं, सभी का जन्म अंदर के भावों के दबाव को प्रकट करने के लिए हुआ। दैनिक आवश्यकता भी कला के जन्म का दूसरा कारण रही।

जब अक्षर नहीं थे, भाषा नहीं थी, लिखावट की तो बात ही बेमानी है, तब मनुष्य ने अपने अंदर की खुशी या दुःख प्रकट करने के लिए चित्र बनाए, पत्थर तराशे, ध्वनियां निकालीं। अनगढ़... अस्पष्ट किंतु भावों से भरपूर। उसने अपनी दैनिक ज़रूरतों को पूरा करने के लिए पत्थरों से औज़ार बनाएं। शिकार के लिए और खेती के लिए। तब वे सुगढ़ नहीं थे। कलात्मकता तो उनमें ज़रा भी नहीं थी, किंतु उनसे काम हो जाता था। उन तमाम प्रारंभिक आविष्कारों को सुधारने तथा परिष्कृत करते जाने का सफर बहुत लंबा था। बाद में वे ही सभी कार्य अपने परिष्कृत स्वरूप में आकर कला के रूप में पहचाने गए।

वस्तुतः कलाएं मानव के संघर्ष तथा जीवट का प्रतीक है और उसके प्रयोग–धर्मी मानस का अक्स भी। जीने के लिए रोटी कपड़ा और आवास तीन मूल–भूत आवश्यकताओं के पूरा हो जाने के बाद भी, इंसान शांति से नहीं बैठा। उसने अन्न उपजाने, पकाने तथा परोसने में अनगिनत प्रयोग किए। वस्त्रों को तरह–तरह से बुना, रंगा, छापा। उन पर चित्रकारी के, सलमें सितारे टांके, रंगीन धागों से कशीदाकारियां कीं। और फिर सीने में तो उसकी रचनात्मकता का अंत ही नहीं रहा। अब बात आवास की करें तो उसे भी बनाने, रंगने सजाने तथा आपद–विपद से बचाने के उपायों में प्रयोग करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। उसका खुराफाती दिमाग बड़ा वैविध्यता–प्रिय है। इस तरह आवश्यकता का परिष्कृत स्वरूप कलाओं के रूप में पहचाना गया।

भावों की अतिरेकता कलाओं के उद्गम का एक और कारण है। आमतौर पर इंसान जीवन में दो तरह की अवस्थाओं से गुजरता है। कभी सकारात्मक स्थिति में रहता है तो सब

अनुकूल चलता है, तो कभी प्रतिकूलता व नकारात्मकता से अवश भी हो जाता है। यह दोनों ही अवस्थाएं कलाओं के जन्म में सहायक होती हैं। खुशी के वक्त अपने इष्ट के प्रति, प्रिय जनों के प्रति आभार ज्ञापित करने गीत, संगीत, नृत्य रचता है, छेनी हथौड़ी ले कोई उपहार गढ़ता है या फिर रंगों को उड़ेल कर चित्र बनाता है। उसी तरह विरोधी भावों का उद्वेलन भी कला के जन्म का बायस बनता है। यह सिलसिला सदियों से ज़ारी है।

लोक कलाओं की दुनिया बड़ी रंगीन, चकित तथा उल्लसित करने वाली है। बहुसंख्यक आबादी वाले हमारे देश के लगभग सत्तर फीसदी लोग गांवों में रहते हैं, उतनी ही भिन्नता उनकी कलाओं में भी दिखती है। पारंपरिक कलाओं की श्रेणी में वे कलाएं आती हैं जो पीढ़ी दर पीढ़ी या गुरु शिष्य परंपरा के अंतर्गत हस्तांतरित की जाती रही हैं। इन कलाओं का इतिहास सौ दो सौ से लेकर हजार दो हज़ार वर्षों पुराना हो सकता है।विस्मृति, बिखराव और उपभोग के समय में भी कलाएं प्रतिरोध की ज़मीं को सींचती हैं।

लोक कलाओं की दुनिया बड़ी रंगीन, चकित तथा उल्लसित करने वाली है। बहुसंख्यक आबादी वाले हमारे देश के लगभग सत्तर फीसदी लोग गांवों में रहते हैं, उतनी ही भिन्नता उनकी कलाओं में भी दिखती है। पारंपरिक कलाओं की श्रेणी में वे कलाएं आती हैं जो पीढ़ी दर पीढ़ी या गुरु शिष्य परंपरा के अंतर्गत हस्तांतरित की जाती रही हैं। इन कलाओं का इतिहास सौ दो सौ से लेकर हज़ार दो हजार वर्षों पुराना हो सकता है। विस्मृति, बिखराव और उपभोग के समय में भी कलाएं प्रतिरोध की ज़मीं को सींचती है।

भारत की हस्तकलाओं के क्षेत्र की पड़ताल करें तो कुछ कलाएं समृद्ध कलाओं की श्रेणी में वर्षों से खड़ी हैं। वे एक नहीं अनेक कलाएं हैं उनमें कश्मीर की पश्मिना बुनाई और पेपरमेशे, पंजाब की फुलकारी राजस्थान की फड़–चित्रकारी व बांधनी, उड़ीसा की प्रस्तर कला, पट–चित्रकारी, बंगाल का कांथा व बालु चेरी साड़ी बुनाई ,असम की मिसिंग मीरी मेखला बुनाई, नागालैंड की शाल बुनाई मणिपुर का टेराकोटा तथा बांस का काम, महाराष्ट्र की पैंढणी साड़ी बुनाई, गुजरात की बांधनी छपाई कर्नाटक के धातु शिल्प, तमिलनाडु की कांचीपुरम साड़ी, आंध्र की कलमकारी इत्यादि कलाओं ने विकास के शिखर छुए, विदेशों में देश का मान बढ़ाया तथा वे अपने–अपने क्षेत्र की पहचान बनी। जिन कलाओं की राह में उतार–चढ़ाव आए, उनमें बंगाल की मलमल बुनाई, असम की सिल्क बुनाई, पाटन का पाटन–पटोला, राजस्थान की कोटा ज़री बुनाई, आंध्र का कांस काम इत्यादि कलाएं आख़िरी सांसें गिन रही थी फिर उनमें नए प्रयोग किए गए, समय के साथ थोड़ा बदलाव लाया गया, कुछ सहृदय लोगों के हाथ बढ़े, समाधान निकाले गए, विमर्श हुआ और उन कलाओं को फिर से जीवनदान मिला। वे फलने फूलने लगी।

कुछ दुर्लभ श्रेणी की कलाएं विलुप्त हो गई। उसके अनेक कारण थे।जैसे राजस्थान बीकानेर की उस्ता–कला के मात्र दो–तीन वरिष्ठ कलाकार बचे हैं जो उस्ता कला के विलुप्त हो जाने का कारण बताते हैं कि उस्ता कोरणी सोने चांदी के पानी से की जाती है, जो पहले ऊंट की खाल पर सजावटी वस्तुएं बनाने के लिए तथा महलों मंदिरों की दीवारों पर तथा तस्वीरों में की जाती थी। जिसे करवाना राजा महाराजाओं या अमीर उमरावों के ही बस की बात थी। धातुओं के भाव आसमान छूने लगे और आधुनिक तरह के निर्माण के प्रति बढ़ता रुझान कला के अवसान का कारण बना। सभी चित्र शैलियों से अलग दिखने वाली 'रोगन चित्रकारी' का एक परिवार ही बचा है पर उसके भाग्य में फिर से चमकना बदा था। उसकी कलाकृति को राज नायकों द्वारा विदेश में उपहार देने के लिए चुना गया। तब से कच्छ के निरोना गांव की रोगन कला फिर से सांसें लेने लगी। महेश्वर बुनाई मध्य प्रदेश में रानी अहिल्याबाई होल्कर के प्रयासों से, बंगाल की बाटिक छपाई और कांथा काम गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर के प्रयासों से पुनः प्रतिष्ठित हुए। आज उन कलाओं का वैभव देखते ही बनता है। जिन कलाकार्यों में समय के अनुरूप प्रयोग हुए और उनका नवीनीकरण होता रहा, वे विकास करती गई।

बांधनी कला के वस्त्रों का चार हजार साल पहले की हड़प्पा सभ्यता के अवशेषों में पाया जाना सिद्ध करता है की यह कला कितनी पुरानी है। जब करेंसी नहीं थी, चीज़ों की अदला–बदली से जीवन यापन हुआ करता था। जैसे रेबारी चरवाहों को एक वस्त्र देते बदले में उसे एक घेटा अर्थात भेड़ बकरी या गाय ले लेते। किसी का कपड़ा रंग दिया बदले में धान ले लिया। उस वक्त ना बाजार था ना दुकानें। कुछ लोग किसी एक कौम का काम करते, तो कुछ लोग किसी दूसरी

कौम का। यह वह वक्त था जब हर कौम जाति और पेशे के लोगों को उनके लिए निर्धारित वस्त्र पहनने जरूरी होते थे। चरवाहे, रेबारी, भरवाड, बनिए और कई कौमों के लिए अलग–अलग तरह के वस्त्र अलग–अलग लोग बनाते थे। साफा, धोती ओढ़नी वगैरह से उनकी जाति की पहचान हुआ करती। विशेषतः पगड़ी और वह भी विशेष प्रकार की पहननी जरूरी होती। यह नहीं कि जो मन–चाहा वही पहन लिया। इस तरह के विभिन्न तरह के वस्त्रों की छपाई का काम होता और आज भी हो रहा है।

आधुनिक लोग इसे रूढ़िवादी सोच भले कहें, दरअसल वे लोग कितने दूरंदेशी रहे होंगे जिन्होंने कलाओं को परम्परा के साथ जोड़ दिया और उसी दूर दृष्टि का परिणाम है कि कुछ कलाएं बड़े उत्साह के साथ अपनायी गईं बल्कि उनमें नित नए प्रयोग हो रहे हैं तथा नए फैशन का पर्याय भी बन रही है। गुजरात में शादी ब्याह में दुल्हन को 'घाटचोला' या 'पानेतर' पहनना जरूरी है, तो राजस्थान में भाई, भांजे–भांजी के विवाह पर भात भरने जाता है तो बांधनी छपाई की लाल साड़ी बहन को अनिवार्य रूप से ओढ़ाता है। सद्यःप्रसवा मां को बच्चे के नामकरण के दिन पीले रंग की बांधनी पहननी जरूरी है और इसलिए ही इस तरह की छपाई हजारों वर्षों से अब तक हो रही है। राजस्थान में तो दूल्हे का साफा भी बांधनी का बांधा जाता है। यह सारी व्यवस्था जातिगत भेदभाव के लिए कतई नहीं थी। गांवों में रोज़गार के अवसर मिलते रहें और कला परम्परा भी बनी रहे। राजस्थान के चित्तौड़गढ़ में अकोला गांव में डाबू छपाई का काम होता है। वहां औरतों के लिए विवाह के समय पहने जाने वाले जोड़े को 'भेटिया' कहा जाता है। ग्यारह मीटर का घाघरा और ऊपर चूंदड़ी जाट जाति में आवश्यक रूप से नव वधू को पहनना होगा, भले वो विदेश प्रवासी ही क्यों न हो। आज भी अकोला में वैसा जोड़ा बनता है। 'डाबू कला' को बचाने में मेवाड़ की रानी राठौउजी ने बेदूच नदी के किनारे छपाई के कारीगरों के लिए गांव बसाया क्योंकि इस कलाकार्य में ज्यादा पानी की ज़रूरत होती है। वहां आज भी दो–ढाई सौ कारीगर काम करते हैं। इस तरह कला को बचाने में राजाश्रय भी रहा और परंपरा भी।

एक समय था जब शिक्षा का प्रकाश गांव के कोनों तक नहीं पहुंचा था। यातायात के साधन भी उपलब्ध नहीं थे। तब मनुष्य अपने ही घर में रहकर जीवन व्यापन करने को विवश था। इस पर भी उसका रचना धर्मी मस्तिष्क कुछ न कुछ नए प्रयोग रोज किया करता। कई बार परिणाम सकारात्मक मिलते, तो कई बार श्रम व्यर्थ जाता पर उसने अपनी कलाओं के साथ प्रयोग करना कभी नहीं छोड़ा।

हस्तकलाओं का विकसित संसार निरंतर प्रयोगों का फलित है। यह हैरत की बात है कि वर्षों पहले जब पर्यावरण में प्रदूषण की कोई हलचल नहीं थी तभी से ये हस्तकलाएं प्रकृति का संतुलन बिगाड़ने की जगह उसके लिए सहायक सिद्ध हुआ करती थीं। यद्यपि हस्तशिल्प के अधिकांश संसाधन प्रकृति से लिए जाते हैं पर वे ही लिए जाते हैं जो अवशिष्ट होते हैं। कुछ उपादान यदि लिए भी जाते हैं तो जितना लिया जाता है उससे ज्यादा लौटाना उन लोगों के स्वभाव में होता है। प्रकृति के प्रति श्रद्धा का भाव इसका कारण रहा होगा। कपड़ों की बुनाई के लिए रेशम सूत,ऊन सब प्रकृति देती है। रंगाई के लिए प्रयुक्त चीजें भी जंगल और खेतों से लेते हैं। लकड़ी उन्हीं पेड़ों की लेते हैं जो मर जाते हैं। फूल–पत्ते–फल स्वयं हवाओं से गिर जाते हैं या अपनी उम्र पूरी कर लेते हैं तब उन्हें लिया जाता है। रंगाई छपाई के लिए खूब पानी की जरूरत होती पर सारा काम प्राकृतिक उपादानों से होता तो वहीं पानी खेतों में जाकर उपज बढ़ा देता ज़मीन को और ज्यादा उर्वर बना देता। खेतों में कभी रासायनिक चीजों का प्रयोग करने की तो जानकारी ही नहीं थी। छोटी मोटी खेती संबंधी समस्याओं का समाधान घरेलू चीजों से ही कर लिया जाता था। इस तरह से भारत के हस्तशिल्प पर्यावरण को शुद्ध रखने का एक प्रयोग हुआ करते थे।

एक समय था जब शिक्षा का प्रकाश गांव के कोनों तक नहीं पहुंचा था। यातायात के साधन भी उपलब्ध नहीं थे। तब मनुष्य अपने ही घर में रहकर जीवन यापन करने को विवश था। इस पर भी उसका रचना धर्मी मस्तिष्क कुछ न कुछ नए प्रयोग रोज किया करता। कई बार परिणाम सकारात्मक मिलते, तो कई बार श्रम व्यर्थ जाता पर उसने अपनी कलाओं के साथ प्रयोग करना कभी नहीं छोड़ा।

बस्तर का आदिवासी इलाका कलाओं का गढ़ है वहां का ढोकरा, गढ़वा और लोह काम ने रचनात्मक सौंदर्य के नए मानक गढें हैं। मुंबई में ताज होटल में हुए आतंकवादियों के हमले व आगजनी के समय भी वहां बस्तर के शिल्प गुरू जयदेव बाघेल जी का ढोकरा काम का एक बेशकीमती शाहकार रखा हुआ था, उसके बारे में खूब चर्चा हो रही थीं और चिंता भी हो रही थी।

पिछले दिनों मुंबई के प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम के कुमार स्वामी हॉल में भारतीय हस्तशिल्प की प्रदर्शनी में भी जयदेव जी की एक अनुपम ढोकरा कलाकृति दर्शकों के आकर्षण का केंद्र बनी हुई थी।

बान की खटिया पर कृषकाय वृद्ध जोड़ा बैठा था उनका वेश विन्यास, देहभंगिमा, चेहरे पर पड़ी झुर्रियां, हाथों की फूली नसें, महिला के नाक की नथनी का मोती, सिर पर पड़ा पल्लू, पुरुष की बेतरतीब पग्गड़ की हर सलवट, यहां तक कि उनके पांव की फूली मांसपेशियां सब कुछ एक पूरे समय को साकार करने में वह डेढ़ दो फुट की ढोकरा कला में ढली आकृति सक्षम थी। उस कलाकृति पर टैग लगा था दो लाख दस हजार रूपए। बाघेल जी से बनाने की प्रक्रिया पूछी तो सुनकर ही पसीना आ गया और यह ख़याल तो सिरे से ही गुम हो गया कि 'इसके दाम इतने ज्यादा क्यों है'। कितना श्रम कितना समय कितने आयामों से निकलने के लिए कितने सारे लोग लगे तब ऐसा शाहकार साकार हुआ होगा, जो मुंबई के प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम की प्रदर्शनी में रखा जा सके, जो कि कला प्रेमियों का काबा है। कारीगर के पास अपने पुरखों का दिया फार्मूला था जो शत–प्रतिशत प्रमाणित है। किंतु उनके पुरखों ने कितने प्रयोग किए, कितना धैर्य साधा, कितना समय लगाया तब कहीं जाकर वे उसे अपनी कला में उतार पाए होंगे। वह कोई डायरी में लिखा हुआ 'टू प्लस टू' का फार्मूला तो था नहीं।

बस्तर का आदिवासी इलाका कलाओं का गढ़ है। इन कामों में जो सामग्री प्रयुक्त होती है वह सुनकर कोई भी दंग रह जाएगा। नदी किनारे की मिट्टी से मोल्ड बनाकर उस पर दीमकों की ढुहों की मुलायम मिट्टी की परत चढ़ाते हैं। मोम का प्रयोग होता है वह भी मधुमक्खियों के छातों से शहद निकाल लेने के उपरांत बेकार हो जाने वाली चीज है। यह सारे फार्मूले इन कलाकारों के पुरखों को भी किसी किताब में लिखे हुए नहीं मिले थे। न जाने उन्होंने कितने–कितने प्रयोग किए होंगे और तब उन्हें कलाओं में उतारा होगा, और ऐसा उतारा कि आज ये लोग उस फार्मूले को छोड़कर नया अपनाने का जोखिम लेना नहीं चाहते। आकार–प्रकार में नवाचार करते हैं किंतु काम पारम्परिक तरीके से ही करते हैं।

बस्तर का आदिवासी इलाका कलाओं का गढ़ है। इन कामों में जो सामग्री प्रयुक्त होती है वह सुनकर कोई भी दंग रह जाएगा। नदी किनारे की मिट्टी से मोल्ड बनाकर उस पर दीमकों की ढुहों की मुलायम मिट्टी की परत चढ़ाते हैं। मोम का प्रयोग होता है वह भी मधुमक्खियों के छातों से शहद निकाल लेने के उपरांत बेकार हो जाने वाली चीज है। यह सारे फार्मूले इन कलाकारों के पुरखों को भी किसी किताब में लिखे हुए नहीं मिले थे। न जाने उन्होंने कितने–कितने प्रयोग किए होंगे और तब उन्हें कलाओं में उतारा होगा, और ऐसा उतारा कि आज ये लोग उस फार्मूले को छोड़कर नया अपनाने का जोखिम लेना नहीं चाहते। आकार–प्रकार में नवाचार करते हैं किंतु काम पारम्परिक तरीके से ही करते हैं।

केसर की सुगंध और स्वाद से कौन परिचित नहीं हैं। उसी केसर से राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त जयपुर के 'बादशाह मियां' एक लहरिये की साड़ी रंगते हैं। अब तक वे छपाई–रंगाई में प्राकृतिक रंगों का ही उपयोग करते रहे हैं। इस बार उन्हें कला उत्सव के लिए अमेरिका में अपने देश की समृद्ध कला का परचम फहराना था। चालीस ग्राम रेशम की बेहद बारीक बुनावट की साड़ी पर आधा किलो शुद्ध केसर से की गई लहरियां छपाई के बाद चटख केसरी रंग की आब देखते ही बनती थी। उस केसरिया साड़ी को छू कर, सूंघ कर, देखना ही रोमांचित कर गया। इस तरह की नायाब और नफीस चीजें न जाने कितने प्रयोगों के उपरांत बनती है। अब समय बदल रहा है। गांवों और शहरों के बीच आवा–जाही बढ़ गई है। लोक कलाओं का बाज़ार भी अच्छा खासा है। निर्यात की भरपूर संभावनाएं हैं। शहरों में अक्सर प्रदर्शनियों के कारण कलाकार आते रहते हैं तो वह शहरी रुझान और नए फैशन से भी परिचित होते हैं। अगली बार के लिए ग्राहकों के अनुसार अपनी चीजों में बदलाव ले आते हैं।ऐसे नवाचार को अपनाना ज़रूरी है। वे दैनिक प्रयोग की चीजों में कलाओं का समावेश कर लेते हैं। रंग भी मौसम के अनुसार और शहरी टेस्ट के अनुसार बदलते हैं। कलाकार बखूबी जानते हैं यदि वे जमाने के अनुसार स्वयं को नहीं बदलेंगे तो उनकी कला बिकेगी नहीं और बिकेगी नहीं तो बचेगी कैसे। ◆

पता : 2201 एकमे एवेन्यू भावरेकर नगर,
चारकोप, खाण्डीवली वेस्ट, मुम्बई–400067
मो. : 9322496620

जिंदगी मिले, ऐसी न दुबारा

❑ आनन्द प्रकाश त्रिपाठी

''मेरे जीवन पर कहानी लिखने से क्या होगा? क्या मेरी फूटी किस्मत बदल जायेगी ? क्या मेरा घर–संसार संवर जाएगा? क्या यह दुनिया बदल जाएगी?

इतना कहकर रमैया चुप हो गई और मेरा मुंह टुकुर–टुकुर ताकने लगी। ज़ाहिर है कि मेरे जवाब का इंतज़ार था उसे। रमैया का प्रश्न मेरे लेखक– मन को उद्वेलित कर गया था। तत्काल कोई जवाब नहीं सूझा मुझे। मैं अपना–सा मुंह लेकर रह गया। रमैया मेरे घर के बाहर थोड़ी देर तक रुकी। आज उसने दीदी को भी नहीं आवाज दी। वह किसी गहरी सोच में डूबी हुई थी। न जाने किस उधेड़–बुन में थी। अचानक, दूसरी गली की ओर मुड़ गई वह। मैं उसे दूर तक जाते हुए देखता रहा। उसका प्रश्न अभी तक मेरे लेखक मन में खदबदा रहा था।

कई दिनों के बाद... आज फिर....इस गली में रमैया का आगमन हुआ है। वह साफ–सुथरी बेल–बूटेदार गुलाबी रंग की साड़ी पहने हुए है। बेल–बूटे का रंग पूरी तरह फीका नहीं पड़ा है। यह साड़ी सावन की हरियाली तीज पर नम्रता ने उसे दी थी। यह बात रमैया ने दीदी को बतायी थी। दीदी से उसकी खूब बनती है। पूरे मुहल्ले में अकेले दीदी ही उसका दुःख समझती हैं। दीदी से ही वह मन की आड़ी–तिरछी बातें करके अपना जी हल्का कर लिया करती है। इस वक्त वह दीदी से ही मिलने जा रही है।

अन्य दिनों की अपेक्षा आज उसका सांवला रंग अधिक खिला हुआ है। जैसे भादों की उजली सुरमई शाम हो। वह साफ–सुथरी और जंच रही है। उसकी ऐसी मोहक छवि पहले कभी देखने को नहीं मिली थी। पहले कभी वह इतनी सजी–संवरी भी नहीं दिखाई दी थी। अरे हां, रमैया के चेहरे पर सदा छाई रहने वाली उदासी की परत आज थोड़ा उतरी हुई है। चौरसिया के घर की तरफ से होते हुए वह दीदी के घर की ओर बढ़ गई थी।

बीच रास्ते में उसे महेशवा मिल गया। रमैया सिर झुकाए आगे निकल रही थी। महेशवा ने लपक कर उसका साथ पकड़ लिया। वह रमैया के साथ–साथ चलने लगा। महेशवा बोला–नमस्ते, रमैया जी ! नमस्ते। रमैया ने कोई उत्तर नहीं दिया और आगे बढ़ गई। महेशवा

कहां मानने वाला था। रमैया की ओर देखकर फिर बोला, नमस्ते ! भाभी ! महेशवा के कहे हुए को अनसुना कर रमैया आगे बढ़ गई थी। नमस्ते ! अरे ! कुछ तो बोलो। तनिक सुन लो, मेरा नाम महेश है। प्यार से लोग महेशवा कहते हैं। अब किसका– किसका बुरा मानूं। आज तो बहुत खूबसूरत लग रही हो। क्या बात है? कहां गई थी? इतनी बातें महेशवा ने कभी नहीं की थी रमैया से। रमैया को बहुत अटपटी लगी महेशवा की बातें, लेकिन वह कुछ न बोली। वह महेशवा के मुंह नहीं लगना चाहती थी। महेशवा जल्दी हार मानने वाला नहीं है। रमैया पर उसकी निगाहें कब से लगी हुई हैं। रमैया ने भांप लिया था महेशवा की नीयत। मुंह लगाने से बचती रही है वह लगातार। रमैया का मन हुआ कि नोच ले उसका मुंह। गाल पर जड़ दे एक जोर का तमाचा। पर, वह कोई तमाशा नहीं खड़ा करना चाहती थी।

हर बार की तरह बिना सोचे–विचारे इसी तरह से बोल रहा था महेशवा, अरे वाह ! आज तो मुहल्ले में बहार आई है। एकदम से लालीपाप। रसभरी। गुलाबजामुन। पसंद है तुम्हें गुलाबजामुन। महेशवा की बातें सुनकर रमैया झट से ताड़ गयी कि महेशवा ने देख लिया था पिछले माह दशहरा के मेले में, मंगल के साथ काली चबूतरे पर बैठकर गुलाब जामुन खाते हुए। रमैया सोचने लगी। महेशवा वहां जरूर शोहदागिरी कर रहा होगा। अरे, मैं अकेली नहीं थी मेले में। मंगल के साथ उसकी घरवाली थी। फिर काहे का डर। बहुत पाजी है महेशवा। जानबूझकर आधी बात बता रहा है। गुलाबजामुन खिलाएगा...धत् ..। मन ही मन रमैया बुदबुदाई थी।

बड़ी देर से दीदी उन दोनों को बातचीत करते हुए देख रही थीं। उस समय वे अपने घर के बाहर खड़ी थीं। रमैया ने दीदी के पास पहुंचकर महेशवा की हरकतें बताईं। यह जानकर दीदी उखड़ पड़ीं और डांटते हुए बोलीं–बहुत जुबान चलने लगी है तेरी। कुछ भी बोल देता है तूं। ऐसे ही बोल रहे तेरे, तो एक दिन पिट जायेगा। जो भी सुनेगा तेरा यह डायलॉग, धुन देगा तेरी पीठ। चल हट यहां से, बदमाश।

रमैया एकदम चुप थी। दीदी की डांट–फटकार सुनकर महेशवा ने वहां से खिसक लेने में ही अपनी भलाई समझी। वह नौ–दो ग्यारह हो गया। अपनी तरफदारी में खड़ी दीदी के प्रति रमैया ने अपनी कृतज्ञता व्यक्त की और कहा, दीदी ! आप जैसा कोई नहीं है। अपनत्व जताते हुए दीदी उसे घर के अंदर ले गईं। चाय बनाकर दी, साथ में मुर्रीवाला नमकीन भी।

लगभग महीने भर बाद रमैया से मेरी मुलाकात हुई। अपने घर के गेट पर मुझे खड़े हुए उसने देखा और लटपट कदमों से मेरे पास आकर खड़ी हो गई और दीदी के बारे में पूछा। दीदी कहां हैं ? मैंने बताया कि बाथरूम में हैं, नहा रही हैं। वह घर के बाहर चबूतरे पर बैठ गईं। मैं जानता था कि अब वह यहां से घंटों हिलने का नाम न लेगी और दीदी का इंतज़ार करेगी। मैं बाहर लान का गेट बंद कर घर के अंदर दाख़िल होने के लिए मुड़ा ही था कि ....अकस्मात् उसने कहानी लिखने की वह बात याद दिलाई जो पिछले माह मैंने उसे बताया था।

मेरी सुधियों के आकाश में उसके वे सवाल नये सिरे से झिलमिला उठे हैं। उस पर कहानी लिखने की बात कहीं मेरे अवचेतन में दब गई थी। पर, रमैया ने कहानी लिखने की बात याद दिलाकर आज मुझे अपने लेखकीय दायित्व का एहसास करा दिया है।

मैं कुछ कह पाता कि वह फिर बोली, "मेरे जीवन की कथा में क्या आकर्षण है? किसी के काम की नहीं है। क्यों लिखना चाहते हो मेरी कहानी? कुछ खोई–सी रमैया फिर बोली, अच्छा भइया ! एक बात बताओ? कहानी क्या होती है? ..... क्यों लिखी जाती है? इससे क्या होगा? उसके होंठों पर एक गहरी चुप्पी आ धमकी थी। उसके दिमाग में क्या चल रहा है? यह मैं कैसे कह सकता हूं। कोई भी नहीं जानता है? वह चुप रही थोड़ी देर तक। मैं आज फिर फ्लाप हो गया था उसके सम्मुख। कहानी को समझा पाना फौरी तौर पर संभव नहीं था मेरे लिए। चुप रहना भी अपमानजनक लगा था मुझे। मेरे मन के तार को छेड़ते हुए वह फिर बोली पड़ी, मेरा जीवन तो कांटों से घिरा हुआ है साहब! अपने ही घर के लोग दुश्मन बन बैठे हैं साहब! और फिर ज़ोर–ज़ोर से बोलने लगी–अरे, मेरा मर्द एक नंबर का हरामी, औरत के चक्कर में....फंस गया है हरामी। मेरे बच्चे....? बच्चों की याद आते ही उसका पारा नीचे उतर आया था। उसके आक्रोश का स्वर निरंतर ढीला पड़ता गया था। रमैया उद्विग्न मनःस्थिति में आ गई थी। वह अपने मन की भंड़ास निकाल लेना चाहती थी। बोली– "आपकी कहानी के लायक नहीं हूं मैं। ....(पलभर ठहरकर).... साहब! मुझ पर कहानी लिखने से क्या होगा? क्या मेरे जीवन में कुछ बदल जाएगा?

रमैया का बार–बार मुझे 'साहब' कहना बहुत बुरा

लगा था, जैसे वह मुझ पर व्यंग्योक्ति कस रही हो। मैंने उसे टोका, 'साहब' नहीं कहना मुझे कभी। किसने कहा कि मैं साहब हूं? मैं साहब नहीं हूं। अध्यापक हूं। बच्चों को सिखाता और पढ़ाता हूं।

वह मेरा मुंह ताकने लगी थी। क्यों साहब? कोई खराब बात है साहब कहना?

मैं सुनता रहा उसकी बातें, जो उसने टुकड़े–टुकड़े में कही थीं। उसके सवाल उसी दिन से हमारा पीछा कर रहे हैं। मुझे लगा, शायद सोच रही होगी कि मकान है, गाड़ी है, ठाट–बाट है, बड़ी नौकरी है, चपरासी आता है हर रोज़ ऑफिस से घर, तो साहब ही तो हैं। पर, पता नहीं क्यों साहब होने से इंकार कर रहे हैं? रमैया की बातें बहुत वाजिब थीं, अनर्गल कतई नहीं। मैं सोच में पड़ गया कि उसे भला कौन समझाए? मेरे और रमैया के बीच कुछ पल के लिए सन्नाटा, मानो शब्द दोनों की जुबां पर ठहर गये हों। मैं उसे ध्यान से देख रहा था। वह अपनी सूनी और खोई हुई निगाहों से मुझे देखने लगी थी। कभी ज़मीन की ओर देखती और कभी मेरी ओर, जैसे कुछ ढूंढ़ रही हो। कभी दीदी के लिए प्रतीक्षातुर उसकी आंखें घर के दरवाजे से टकराकर लौट आती हैं।

यह देखकर मुझे प्रतीत हुआ जैसे अपने प्रश्न के उत्तर की प्रतीक्षा में है वह। उस क्षण विशेष में मैंने उसकी आंखों में झांक लिया था। उसके मन में उमड़–घुमड़ रहे प्रश्न–दर–प्रश्न कौंध उठे थे। मैं सोच में पड़ गया था कि उसके मन में कितने सवाल तैर रहे हैं, अंदाज़ लगाना बहुत ही मुश्किल है। फिलहाल, अभी उसका आज का प्रश्न मुझे बेचैन किए हुए था। यह कोई मामूली प्रश्न नहीं है। गांव की अति मामूली औरत और इतना मारक प्रश्न। उसका यह प्रश्न न जाने कितने प्रश्नों से अधिक भारी था, जिसे सुनकर मैं एकदम अवाक् रह गया था। रमैया के प्रश्न का कोई सटीक जवाब तत्काल मुझे नहीं सूझा। एक क्षण के लिए तो मैं ठिठका, फिर उस मोटी काली काया पर दृष्टि न जाने क्यों टिक गई। रमैया बाहर चबूतरे पर बैठ गई थी। उस वक्त, मैं इतना ही कह पाया उससे ...सोचकर बताऊंगा। रमैया मेरे इस आश्वासन से संतुष्ट कैसे हो सकती थी? एक अजीब–सी उलझन ने मुझे घेर लिया था। 'आ बैल मुझे मार' की तर्ज़ पर मैंने अपने लिए खतरा मोल ले लिया था। उस वक्त तो मेरी अक्ल जवाब देने लगी थी। मैं सोच में पड़ गया कि नाहक ही मैंने उस पर कहानी लिखने की बात उसे बता दी। इस बात का अंदाज़ा तो मुझे पहले से ही था कि रमैया न जाने कब? और क्या बोल उठे? चिल्लाने लगे? लेकिन आज वह बहुत शांत थी। रह–रहकर मेरा मन बेचैन हो रहा था, मैं तनिक विचलित भी हुआ, यह सोचकर कि रमैया क्या सोच रही होगी– मुझ लेखक के बारे में? शायद कुछ इसी तरह, जैसा कि इस वक्त मेरे ख़याल में आ रहा था कि–'जब एक लेखक के पास उसके सवालों का कोई जवाब नहीं है तब मुहल्ले के सामान्य पढ़े–लिखे और अधकचरी मानसिकता वाले लोग उसकी समस्या का क्या उत्तर देंगे?' सवाल यह भी है कि क्या किसी समस्या के समाधान का जिम्मा किसी लेखक के पास है और यह भी जरूरी नहीं है कि समस्या का समाधान प्रशासनिक स्तर पर हो सके। रमैया का केस भी टिपिकल है। सोशल जस्टिस की मांग करता है। इस देश में न्याय व्यवस्था पर क्या टिप्पणी करूं। हम सब जानते हैं। रमैया की समस्या एक साइक्लॉजिकल केस स्टडी है। मानसिक रूप से बहुत जटिल। उसकी देह–दशा एक बीमार मरीज सी हो गई है। उसकी मनोदशा सामान्य नहीं कही जा सकती है।

किसी एन.जी.ओ., स्त्री सशक्तीकरण संस्था या महिला कल्याण समिति, किसी सरकारी हाकिम ने कभी उसकी सुधि नहीं ली। वर्षों से वह इसी मुहल्ले में भटक रही है। किसे फुर्सत है रमैया की ज़िंदगी में दखल देने की। औरत होने के नाते भी लोग डरते हैं, रास्ता बरा के चलते हैं। आफत कौन मोल ले। फिर भला, मैं रमैया से कैसे कहूँ कि इस कहानी में तुम्हारी समस्या का कोई हल है? उसकी समस्या का कोई उपाय इस लेखक के पास नहीं है। वैसे भी किसी लेखक के पास किसी समस्या का कोई ठोस समाधान नहीं होता है। उसे तो अपनी संवेदना के बूते यथार्थ के धरातल पर कहानी भर लिखना है, पूरे जज्बात के साथ, सच्चाई को उरेहना है। और मैं इस कहानी में वैसा ही कमाल करना चाहता हूं जैसा प्रायः कहानी लिखने वाले लोग करते हैं।

मैं चाहता हूं कि इस कहानी में एक–दो किरदार ऐसे शामिल हो जायं जो रमैया की जिंदगी के इर्द–गिर्द हों और उसे कोई सही राह दिखा सके हों तथा उसके साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार रखते हों। मुहल्ले की कई स्त्रियों के दिल में रमैया के लिए दया और सहानुभूति का भाव जुगनू की मानिंद टिमटिमाता हुआ मुझे नज़र आया। उन स्त्रियों में एक नम्रता भी है। एक अध्यापक की पत्नी। रमैया के प्रति नम्रता का लगाव दया एवं सहानुभूति की सरहदें पार कर गया है, दोनों ही एक दूसरे को अच्छी तरह से समझते–बूझते हैं।

मैं अपने स्टडी रूम में हूं, भोर का समय, बिल्कुल एकांत, सिर्फ पंखे की सनसनाहट, चिड़ियों की चहचहाहट कानों को सुकून दे रही थी। ....मैं स्थितिप्रज्ञ अवस्था में पहुंच गया हूं। रमैया के पूछे गए सवाल का उत्तर ढूंढने की कोशिश करता हूं । दिमाग को खुरचने से किसी समस्या का हल कभी निकला है क्या? और हल हो भी तो वह सिर्फ कागज़ी होगा। जैसे जनहित की बहुतेरी सरकारी योजनाएं कागज़ों पर चलती हैं। कोई तूफ़ान नहीं खड़ा करती है जनता। सब सहन कर लेती है। आखिर कागज़ी घोड़े दौड़ाने वाले लोग इसी समाज के लोग हैं, हमारे बीच के लोग हैं। बड़ी मुश्किल है इन स्थितियों से पार पाना। रमैया की कोई सुधि लेने वाला नहीं है। वह पढ़ी–लिखी नहीं है कि उसे समझाया न जा सके। वह निरी जपाट भी नहीं है। रट लगा लेती है किसी बात को लेकर, जो बात उसके मन में पैठ जाय। कहानी लिखने वाली बात भी उसके मन में जम गई है। शायद... मेरी लिखी कहानी में वह अपने कष्ट का कोई हल सुनना चाह रही हो। अपनी कहानी सुनने की उसकी उत्सुकता ने मुझे कहानी लिखने के लिए उत्साहित कर दिया है।

सच है कि कहानी तो पात्र के सुख और दुःख से लोगों को अवगत कराती है और आगाह भी करती है। मैं अपने मन की बात उसे बता पाता कि उसके पहले ही रमैया न जाने क्या सोचकर उदास हो गयी थी। मैं भी सोच में पड़ गया था कि वाकई मेरे जैसे कलमघिस्सू के पास उसके जीवन के बेहद कठिन और जटिल सवालों का कोई उत्तर नहीं है? मेरे भीतर का इंसान लगातार मेरे लेखक को धिक्कारे जा रहा था कि क्यों बहुत डींगें मारते–फिरते हो कि साहित्य से संसार बदल जायेगा? बेहतर दुनिया का देखा हुआ लेखक का सपना सच हो जायेगा? अकिंचन मेरा लेखक बड़ा दबसट महसूस करने लगा था। फिर भी, मायूस होकर भी वह पराजित नहीं हुआ था। मुझे एक रास्ता सूझा कि उसके दुःख में अपनी सहानुभूति का गाढ़ापन व्यक्त करूँगा और पाठकों को उसके कष्ट से परिचित करा दूँगा। पर यह बात भी मुझे बहुत माकूल नहीं लगी। क्या इतना ही कर्तव्य है एक लेखक का? यह तो सामान्य–सी बात है। कुछ समय के लिए तो मैं उसके उस प्रश्न से ही नहीं, उससे भी कन्नी काटने लगा था। बार–बार मेरे जेहन में सलीब पर टंगा ईसा मसीह का चित्र ध्यान में उभरने लगा था। मेरे मन ने मुझे ही कटघरे में खड़ा करना चाहा है। सवाल यह है कि यह कहानी लिखकर क्या मैं रमैया को सरेआम किसी सलीब पर टांग देना चाहता हूँ। या कि कहानी लिखकर कोई परोपकार कर रहा हूँ, एहसान कर रहा हूँ। नहीं, नहीं–ऐसा कुछ भी नहीं। रमैया का भी अपना स्वाभिमान है। हमें उसका ख़याल रखना ही होगा। इंसानियत के नाते ही सही। यह विचार मन में कौंधते ही मेरा चित्त थोड़ी देर के लिए शांति का अनुभव करने लगता है।

अगले दिन, सुबह बीतने पर, औचक रमैया से फिर मेरी भेंट हो गई। वह सामने पूरब वाली सड़क से मेरे घर की ओर चली आ रही थी और मैं ड्यूटी के लिए घर से निकल रहा था। देखते ही देखते वह एकदम गेट के पास आ गई। न चाहते हुए भी उससे मुखातिब होना पड़ा। उससे मिलकर मैं अपना दिमागी सुकून नहीं खोना चाहता था। मुझे यह डर भी हुआ कि कहीं कहानी लिखने के बारे में पूछने लगे और मेरी कोई खास तैयारी नहीं है। उसके प्रश्नों का कोई सटीक उत्तर भी मेरे पास नहीं है।

उसने बड़े अदब से संबोधन किया, भइया! दीदी कहाँ हैं? दीदी यानी मेरी धर्मपत्नी। मैंने कहा, दीदी पूजा कर रही हैं। वह शांत थी। जैसे इसके आगे जानने की कोई उत्सुकता नहीं रही है। मैंने उसे ध्यान से देखा, जैसे वह कुछ पूछने का मन बना रही है। तपाक से मेरी तरफ देखकर वह बोली –भइया! लिख दी मेरी कहानी? सच्ची या झूठी? क्या होगा उस कहानी से? उसके इन कठोर सवालों से मैं मुंह चुराने की स्थिति में आ गया था। मैं सकपका गया, भीतर ही भीतर हड़बड़ा उठा था। मैंने कहा– ''नहीं, अभी तो नहीं लिख पाया हूँ। अभी महीने भर पहले ही तो बात हुई थी तुमसे। इतनी शीघ्रता में कहानी नहीं लिखी जाती है। बहुत सोचना–विचारना पड़ता है। बहुत कुछ ऐसा है ..., अरे! तुम नहीं समझोगी।'' मैं मन ही मन विचार कर चुप हो गया था। रमैया के उस प्रश्न के सामने मेरे सारे उत्तर निढाल हो चुके थे।

वह आंखें फाड़कर मेरा मुंह देखने लगी थी। वाकई मेरा मन पूरी तरह पढ़ लेना चाहती थी। क्या पता पढ़ ही लिया हो। और मैं मुंह चुराने की स्थिति में पहुंच चुका था।

मेरे अंतस् में भावनाओं के उमड़–घुमड़ रहे बादल अभी बरस नहीं पा रहे थे। मैं तो उसे समझाना चाहता था। पर ऐसा संभव नहीं हुआ। वह कुछ बड़बड़ाती हुई आगे बढ़ गई थी। उसकी बड़बड़ाहट शायद यह रही होगी कि, जैसा मैं समझ पाया कि वह अपने बच्चों का नाम लेकर उनसे कुछ कह रही है। वे बच्चे अब उसके पास नहीं हैं।पति बिहारी ने छीन लिए हैं। बाप के डर और दबाव में आकर तीनों बच्चे मां से विलग हो गये हैं। रमैया अपने बच्चों को याद करके पगला

गई है। तीन साल हुए उसे शहर में आये हुए। अब तो उसके बच्चे सयाने हो गये हैं। कुछ ही साल बाद वे जवानी की दहलीज पर कदम बढ़ा चुके होंगे।

मेरा व्याकुल मन रमैया की त्रासदी जानकर बहुत विचलित हो उठा था। मैं यह सोचने के लिए बाध्य हुआ था कि एक लेखक रियल लाइफ में खुद कितना लाचार है कि जिस पात्र को संघर्ष के लिए प्रेरित कर रहा है, वास्तविक जीवन में उसके पक्ष में खड़ा नहीं हो सकता है। एक लेखक के लिए यह बड़ी चुनौती है। अपने मन को समझाने के ख़याल से मैं एक रेडीमेड उत्तर तैयार कर लेना चाहता था। सांप मर जाय और लाठी भी न टूटे। पर यह संभव नहीं हुआ। जिंदगी का प्रश्न है। न कि किसी मुहावरे का उत्तर ढूंढना।

मेरी बातें रमैया के पल्ले नहीं पड़ सकती थी। ऐसा लगा कि मैंने कुछ ज्यादा ही कह दिया है उससे। मेरी समझाइश निष्फल साबित हुई। रमैया बोल पड़ी–अच्छा भइया, मैं जाती हूँ। '' और उस दिन वह मेरे घर से आगे बढ़ गयी थी। मैं भी ऑफिस के लिए निकल पड़ा था। रास्ते भर मैं सोचता रहा कि इस कहानी को रचने से क्या मेरे कहानीकार का भाग्य चमक उठेगा? रमैया की कहानी में क्या कुछ दम है? कैसी होगी उसकी ज़िंदगी पर कहानी? लीडिंग रोल में क्या वह जँचेगी। या कोई दूसरा स्त्री पात्र ले आऊँ। इसी उधेड़बुन में मेरा मन कई दिनों तक फंसा रहा। उस वक्त कोई बेहतर रास्ता मुझे नहीं सूझ रहा था। लेकिन मेरा मन अडिग था अपने पूर्व निर्णय पर। कुछ भी हो, इस कहानी में केन्द्रीय भूमिका रमैया की ही होगी।

मेरी बातें रमैया के पल्ले नहीं पड़ सकती थी। ऐसा लगा कि मैंने कुछ ज्यादा ही कह दिया है उससे। मेरी समझाइश निष्फल साबित हुई। रमैया बोल पड़ी–अच्छा भइया, मैं जाती हूँ। '' और उस दिन वह मेरे घर से आगे बढ़ गयी थी। मैं भी ऑफिस के लिए निकल पड़ा था। रास्ते भर मैं सोचता रहा कि इस कहानी को रचने से क्या मेरे कहानीकार का भाग्य चमक उठेगा? रमैया की कहानी में क्या कुछ दम है? कैसी होगी उसकी ज़िंदगी पर कहानी? लीडिंग रोल में क्या वह जँचेगी। या कोई दूसरा स्त्री पात्र ले आऊँ। इसी उधेड़बुन में मेरा मन कई दिनों तक फंसा रहा।

पिछले तीन सालों से रमैया इस मुहल्ले की रहवासी बनी हुई है, लेकिन रहने के लिए उसके पास कोई ठिकाना नहीं है। मुहल्ले में खपरैल वाले मकान का खण्डहर उसकी शरणस्थली बना हुआ था। उस मकान का मालिक किसी दूसरे शहर में रहता है। इसलिए किसी को भी रोक–टोक नहीं है। मुहल्ले के ही कुछ शरारती तत्त्वों की निगाह उस टूटे–फूटे मकान पर पड़ी और उन लोगों का आना–जाना वहां बढ़ गया था। रमैया को वह खंडहर भी छोड़ देना पड़ा था।

किराया चुकाने के लिए उसके पास न पैसे हैं और न ही किसी आदमी की गारंटी। खाने और पहनने के लाले पड़े हों जिसके सामने, वह भला किराये पर एक कमरा कैसे ले सकता है ? यह रमैया के जीवन की सबसे बड़ी समस्या थी। इसका कोई समाधान न उसके पास था और न ही दीदी जैसी नेकदिल महिलाओं के पास।

मुहल्ले में जहां–कहीं परिचित घरों के आसपास सोने–बैठने भर की जगह उसे मिल जाती है वहीं वह पसर जाती है। दिन तो यहां–वहां भटककर जान–पहचान की औरतों के साथ मिलजुल कर बीत जाता है। लेकिन रात उसके लिए सबसे कठिन घड़ी है। वह भी एक औरत के लिए।

यहां–वहां घूम–फिरकर रमैया की ज़िंदगी के तीन वर्ष बीत गए, लेकिन पहाड़–सी जिंदगी कैसे बीतेगी? यह सवाल उसे उतना नहीं, जितना उसकी शुभचिंतक महिलाओं के मन को बेचैन किए हुए है। रमैया तो जीवन–मरण के प्रश्न से अनभिज्ञ है। उसको लेकर दीदी सबसे ज्यादा दुःखी रहती हैं। रमैया भाग्य की चाल को आख़िर कैसे समझ सकती है? अपने दिमाग पर ज़ोर डालना उसने छोड़ दिया है। घर वालों की तरह ज़िंदगी भी जैसे उससे रूठ गई है। इस बात के लिए वह खुद जिम्मेदार है? यह कोई कैसे मान लेगा। किंतु हां, आज की तारीख में वह बेहद लाचार है। उसकी दिमागी हालत अब ठीक नहीं रह गई है।

गांव से आकर पहली बार रमैया के कदम इसी मुहल्ले में पड़े थे। चूंकि पहले भी वह इस मुहल्ले में रह चुकी थी और सभी उसे पहचानते थे। शुरुआती दिनों में अफसर कॉलोनी के पास झुग्गी–झोपड़ियों वाली गुरु घासीदास कॉलोनी में उसने एक कमरा किराए पर लिया था। यह कॉलोनी सत्तनामी संत गुरु घासीदास के नाम पर है, जिसमें छत्तीसगढ़ के रहने वाले सत्तनामी पंथ के अनुयायियों की

बटोर थी। उसी से सटी अफसरों की कॉलोनी है। अफसरों के दो–एक घर के अलावा इस मुहल्ले के तीन–चार घरों में वह बर्तन मांजने का काम करने लगी थी, दीदी जैसी दो–तीन महिलाओं को तेल मालिश करती थी। अपना गुजर –बसर करने लायक पैसा वह पा जाती थी। पेट की आग बुझने लगी थी और एक–एक दिन बीतने लगा था।

घासीदास कालोनी में रमैया को रहते हुए तीन–चार महीने बीत गए थे। वहां का माहौल उसे नहीं भाया। आवारा किस्म के लड़कों की हरकतें देख–सुन कर वह भयभीत हो गई थी। अभी तीन माह ही बीते थे। अपनी इज्जत–आबरू बचाने की चिंता में रमैया इतनी भयभीत हो गई कि उसका जी उस माहौल से बुरी तरह उचट गया था और एक दिन वह भाग निकली वहां से। वह शाम कैसे भुलाई जा सकती है ? जब रमैया बदहवास–सी मेरे घर आई थी। उसने मेरी पत्नी यानी दीदी (इसी संबोधन से वह श्रीमती जी को पुकारती है) से सारी बातें बताई। उस दिन के बाद दुबारा झुग्गी बस्ती में जाने की उसकी हिम्मत न हुई। उस रात रोटी–सब्जी हमारे ही घर से उसे खाने को मिली थी। उसकी रात कैसे कटेगी ? यह सवाल दीदी को कुछ ज्यादा ही परेशान किये हुए था। उनकी दयालुता का कोटा कभी खत्म होने वाला नहीं है। उस रात बाहर पोर्च में रमैया के सोने की व्यवस्था कर दी गई।

अगले दिन रमैया मुहल्ले के उन घरों में जाकर अपनी हाज़िरी दे रही थी जहां–जहां उसके भरोसे का खूंटा गड़ा हुआ था। कोई खुटका नहीं रह गया था उसके मन में। वह नम्रता से भी मिली।

पांच–छह साल पहले वह सपरिवार इस मुहल्ले में रह चुकी थीं। पति बिहारी मजदूरी करता था। उसके एक ही ऐब से उसकी जिंदगी पर ग्रहण लग गया था। वह पियक्कड़ निकल आयेगा, यह रमैया ने कभी सोचा ही नहीं था। बड़के बाबू के यहां काम करते हुए, उनकी सेवा–संगत में रहते हुए बिहारी के कदम बहक गये थे। घर आकर वह रमैया से बलात् जानवरों–सा व्यवहार करता था। रमैया के वैवाहिक जीवन के सुंदर सपने जगने के पहले ही बुझना शुरू हो गये थे। पति–पत्नी के बीच सामंजस्य के धागे बहुत उलझ गये थे और बाद में छिन्न–भिन्न हो गये। अपने मरद की मार खाकर रमैया कब तक अपनी पीठ सहलाती, चेहरे पर सूजन और पांचों उंगलियों के निशान कब तक सबसे छुपाती, रोज–रोज की मारपीट से वह तंग आ गई थी। हार मान लेने और पति का अत्याचार और अपमान सहन करने के अलावा उसे कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था। रमैया के जीवन में भला सुर्खाब के पंख कैसे खुल पाते। शराबी पति को वश में कर पाना उसके बूते की बात नहीं रह गयी थी। थक–हारकर रमैया बाल–बच्चों समेत अपने गांव चली गई। कुछ दिनों के बाद बिहारी भी गांव पहुंच गया। औरत का सुख वह कब तक बरा सकता था।

आज रमैया अकेली है, परिवार का साथ छूट गया है। यह मुहल्ला ही उसकी शरणगाह है। बहुत बदहाल हालत में है वह। उसकी अंटी में एक दमड़ी नहीं, बदन में चमक नहीं रह गई। उसकी हालत पर तरस खाकर कितने ही घरों की महिलाओं ने उसे खाने और पहनने को दिया। धीरे–धीरे उसकी ज़िंदगी सांसें लेने लगी। चलती–फिरती रमैया इस मुहल्ले की पहचान बन गई। उसे देखकर बाजू वाले मुहल्ले का कोई भी व्यक्ति कह उठता है कि अरे, फलां मुहल्ले वाली औरत। अरे रमैया। थोड़े ही दिनों में रमैया प्रसिद्धि पा गई थी। घर की ठुकराई, किस्मत की मारी, बेचारी अकेली औरत ''अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी'' का सच रमैया के जीवन का सच बन गया है।

रमैया कानी–कौड़ी की मोहताज है। फिर भी, वह भिखमंगी नहीं है। कभी भीख मांगते हुए, किसी के आगे गिड़गिड़ाते हुए, हाथ पसारते हुए उसे नहीं देखा गया। स्वेच्छा से खाने और पहनने को जिसने भी उसे जो कुछ दिया उसे ही वह स्वीकार कर लेती है। उपेक्षिता के भाव से किसी की दी हुई चीज उसने स्वीकार नहीं की है। यदि किसी ने बासी और खराब खाना उसे खाने को दिया तो वह आगे बढ़कर गाय या कुत्ते को खिला देती है। मुहल्ले की महिलाओं द्वारा दी गई पुरानी साड़ियां पहनना उसके लिए शौकिया नहीं है, मजबूरी है। अपने घर से दुरदुराई जाने के कारण उत्पन्न उसकी शोचनीय स्थिति हर किसी के मन को दुखा देती है। उसके प्रति सहानुभूति की लहरें मुहल्ले के मरदों और औरतों के मन में उफनती रहती थीं।

विधि का यह कैसा विधान? पूरा कोरोना काल बीत गया। हजारों–लाखों लोग काल के गाल में समा गए। कितने बेमौत मरे, लोगों के परिवार बिखर गये। इस शहर में भी कोरोना से सैकड़ों जानें चली गईं। लेकिन रमैया को कुछ भी नहीं हुआ। एक छींक तक न आई। वह बौड़म सी मुहल्ले में घूमती रही। न मास्क और न सेनिटाइजर। मुहल्ले में सब यही कहते थे कि इसकी मौत नहीं आई। इसे दुःख झेलना

बदा है। परंतु अब तो रमैया पगला–सी गई है। अपने बेटे शेखर और बेटी रश्मि के लिये। दिन में कितनी ही बार अपने बच्चों को याद कर बड़बड़ाती है। वह जोर–जोर से अपने बच्चों का नाम लेकर कहती है– शेखर! शेखर!! कहां हो बेटा! सुनो, आ जाओ। यकायक उसकी मद्धिम आवाज एक करुण चीख में बदल जाती है। अरे देखो पापी को, बहुत मारा है शेखर को, बचा लो, बचा लो। उसकी आवाज़ का वाल्यूम अचानक कम हो गया। वह अपने मरद को कोसती है। बहुत मार रहा है वह। देखो! देखो! वह देखो!! शेखर रो रहा है। बाप कसाई है। मारता है बच्चों को। इसी तरह वह बड़बड़ाने लगती है।

मुहल्ले में लोग जान जाते हैं कि आज रमैया पगला गयी है। मानो भूत चढ़ गया है।

इस कहानी में जिन पात्रों को इंट्रोड्यूस करना है, उनमें नम्रता मुझे ज्यादा अच्छी लगी थी। भोली–भाली सी। पाठकों को अच्छा लगेगा नम्रता से मिलकर। एक बार फिर मेरे कहानीकार ने विचार किया। अगर रमैया का किरदार नहीं पसंद हो तो फिर क्यों लिखूँ कहानी? क्या पाठकों की संवेदना में इज़ाफा होगा? लेखक/कलाकार अपनी संवेदना और जीवनानुभवों से एक नया जीवन गढ़ लेता है। एक नया पात्र जीवन पाता है। फिर रमैया की क्या बिसात? इस कहानी को क्या रमैया हिट करा पायेगी।

रमैया भी वही तो नहीं रह जायेगी जो असल जिंदगी में है। मैंने भी ठान लिया है कि हू–ब–हू उसी रमैया को कहानी के कैनवस पर उतारूंगा जो जीती–जागती हमारे सामने आती रहती है। यह सारी बातें मेरे मन के ढीले तारों को कसती जा रही थीं। सहसा जीवन का कोई संगीत उभर आया। अनुभवों की घाटी में सत्य के सूरज के प्रकाश को पकड़ने की मेरी जिद्द है। अचानक मेरी कलम रुक गयी, मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो मेरे सामने खड़ी है रमैया, जिसके जीवन का एक प्रसंग इस कहानी में उरेहना चाह रहा हूँ। वह आवाज़ दे रही है, लिखो, खूब लिखो, मैं कैसे रोक सकती हूँ लिखने से, पर सच की स्याही से इबारत खड़ी करना। रमैया ने एक पल के लिए बोलना बंद किया, जैसे कुछ सोच रही हो, परेशान हो। परेशानी को तो उसने अपने गले बांध रखा है, हमेशा के लिए। वह फिर बोली, ''मेरे जीवन का कोई क्षण किसी के काम का नहीं है।'' सच में बड़े–बड़े चरित्रों के बीच वह कहाँ टिकेगी ?कौन उससे नेह लगायेगा। उसके जीवन का यथार्थ किसी के लिए प्रेरणादायक नहीं होगा। यह सब सोचकर मेरा मन उदास हो रहा था। मैंने कहा, रमैया! मैं सच में थोड़ा कल्पना का रंग मिलाऊंगा। वह जाते हुए कहती गई कि–''अब यह सब तुम जानो, मेरे जीवन के सच से किसी का मन मटमैला न हो, मैं जैसी हूँ, वैसी हूँ।''

दिसम्बर महीने का आख़िरी गुरुवार, शहर और आसपास का ग्रामीण इलाका भीषण ठंड, पानी और कुहरे की चपेट से आज ही मुक्त हुआ है। धूप में नहाया हुआ शहर जैसे धूप का गढ़ बन गया। पेड़–पौधों के चेहरे पर खिली–खिली धूप बेहद लुभावनी लग रही है। धुली–पुछी पेड़ की हरी देह की चमक बढ़ गयी है, दिन का वातावरण धूपमय हो गया है। दो गिलहरियां आपस में उछलकूद करती हुईं बगीचे में खड़े अमरूद के पेड़ की ओर एक दूसरे का पीछा करते हुए भागीं।

ठंड की कठोरता कुछ हटते ही लोगों का अपने घरों से निकलना बढ़ गया है। छत एवं बालकनी में बैठने के आनन्द से कोई वंचित नहीं होना चाहता है। मुहल्ले में एक रमैया ही है, जिसके पैर एक जगह नहीं टिकते हैं। इस घर–उस घर रुकती, औरतों की बातों में अटकती, बतियाती और बीच में ही चिल्लाने लगती– मेरा शेखर, रश्मि, चाँदनी कहाँ है ? वह बीमार हैं, कोई उसके पास नहीं है। वह मार डालेगा–और भी कुछ इसी तरह की बातें। वह बच्चों को लेकर बहुत परेशान रहती है। उलझन में रहती है। पूरा मुहल्ला जान गया है उसकी पीड़ा। दिन भर में कई बार बच्चों का नाम लेकर चिल्लाने लगती है। वह कहती है, मेरे बच्चों को बहुत मारा है। बचा लो। कोई नहीं सुनता है मेरी बात। सबकी सहानुभूति मिलती है उसे। कोई सहायता नहीं कर सकता है उसकी। नम्रता ने सलाह दी कि पुलिस थाने जाकर रिपोर्ट लिखा दो, पर वह डर जाती है। चुप हो जाती है। बिना कुछ कहे चली जाती है। फिर कई दिनों तक नहीं आती है नम्रता के पास। किसी के समझाने का असर नहीं पड़ता है उस पर। कोई अनजान भय उसे लगातार घेरे रहता है। अब वह सबकी नज़रों में धीरे–धीरे तमाशा बनती गई। पर कभी किसी के लिए तमाशा खड़ा करना उसे नहीं आया है। कभी उसने किसी के चिढ़ाने पर गाली नहीं दी है। वह सभ्य भी है। उस दिन उसका चीखना, उसका पागलपन ज्यादा देर तक नहीं टिका। बड़बड़ाती हुई आगे बढ़ी। चालीस की उम्र के लिहाज से वह शरीर से बहुत भारी हो गयी थी। देह फूल गयी थी। उसके कदम नम्रता के घर की ओर बढ़ चले थे।

महेशवा बहुत दुखी है रमैया की बिगड़ी हुई मानसिक स्थिति और दुर्दशा को देखकर। वह दीदी के घर की ओर से

निकल रहा है, दीदी गेट पर झाड़ू लगा रही थीं। वह रुका और तपाक से दीदी के पांव छुए। दीदी ने हालचाल पूछा। महेशवा की घरवाली पेट से है, जानकर दीदी ने खूब अशीषा उसकी लुगाई को। महेशवा ने दीदी का मन–मुंह–भांपकर पूछा–दीदी! क्या हो गया है रमैया को ? कौन सी बीमारी लग गई इसकी सुंदर काया को। झुराती गई है वह। दीदी चुप खड़ी रहीं और महेशवा के मन को समझकर बोलीं, क्या कहें उसके भाग्य को? बहुत अभागिन है। भीतर ही भीतर चिंता खा गई उसे। बच्चों की चिंता। भूखी–प्यासी कितना सहन करती सबकुछ। दर–दर की ठोकरें खाना बदा है उसे। कोई बीमारी लग गई है उसे। घुन की तरह चाल गई हरी भरी देह उसकी। महेशवा सुनता रहा रमैया की दुःखभरी कहानी। दीदी ने कहा अब उसका कष्ट ईश्वर ही दूर करेगा। महेशवा मन ही मन दुखी हुआ। रमैया का पहले का रूप–यौवन झलक उठता है उसकी स्मृतियों में। वह मन ही मन खुश भी था कि उसने भी एक बार साड़ी रमैया को पहनने को दी थी। मौके पर खाना भी कई बार खिलाया था उसे।

उस दिन गुरुवार था। नम्रता गुरुवार का व्रत थी, दोपहर की रसोई तैयार कर वह भोजन के लिए उद्भव का इंतजार कर रही थी। घर का बाहरी दरवाज़ा खोलकर उसने बाहर झांककर देखा, सामने से आ रही गाय नम्रता के सम्मुख खड़ी हो गयी। गौ को देखकर नम्रता बोली, लो ये भी आ गयीं महारानी, जैसे दरवाज़ा खुलने का इंतज़ार कर रही थीं। अच्छा खड़ी रहो, अभी रोटी ले आती हूँ। नम्रता दरवाज़ा अधखुला छोड़ कर किचेन में रोटी लेने चली गयी।

हररोज दो–चार गायें, बछड़े–बछिया उसके घर के सामने वाली सड़क से गुजरते हैं। इन्हें आसपास किसी ने पाल रखा है, पर बछड़ों को तो घर निकाला दे दिया गया है। लोग कितने स्वार्थी हो गये हैं, गाय का पूरा दूध निचोड़ कर उसे छुट्टा छोड़ देते हैं। यही गाय और बछड़े दिन भर सड़कों पर, गली कूंचे में भटकते–फिरते हैं। कुछ घरों से रोटी के एकाध टुकड़े खाने को मिल जाते हैं। यही हाल कुत्तों का है। दर–दर दुरदुराये जाते हैं। एकाध टुकड़ा रोटी किसी के घर से मिल जाती है। बस इसी आसरे इस घर–उस घर के दरवाजे पर किसी भी सदस्य को देखकर दुम हिलाने लगते हैं।

नम्रता भी गाय और कुत्तों के लिए दो–चार रोटियाँ अधिक बना कर रख लेती है। हर रोज का उसका यही नियम था। पहली रोटी गाय के नाम पर बनाती है और अंतिम रोटी कुत्ते के लिए।

दरवाजे पर गाय और सांड़ आकर खड़े हैं। नम्रता ने गाय और सांड़ को रोटी खिला दी है। दोनों रोटी खाकर चले गए। कौए के लिए रोटी छत पर रख आई। कुतिया भी अपना हिस्सा ले गई। इतने में रमैया भी आ गयी ।नम्रता ने उसका हाल पूछा, दुख तकलीफ सुना और बतियाते हुए लॉन के अंदर सीढ़ियों के पास उसे बिठा दिया। नम्रता ने पूछा–कुछ खाया है तुमने। रमैया दुःखी भाव से बोली– दीदी! कुछ नहीं। बस चौरसिया के घर से दो सूखी रोटी मिली है। यह कहकर उसने आंचल नम्रता के आगे खोल दिया। एक मटमैली सी पन्नी में कुछ रोटियां थीं, अचार का एक टुकड़ा। रमैया ने पैकेट खोला और रोटियां घर के बाहर रख दीं। दोनों रोटियां फर्श पर बिखर गयीं। नम्रता ने देखा कि वे रोटियाँ बासी हैं और सूख गई हैं। आदमी के खाने के लायक नहीं हैं। नम्रता को दुःखी देखकर रमैया बोली, आप क्यों दुःखी होती है? यह मेरा दुःख है भाग्य में, मैं यही लिखा कर लाई हूँ। इसे कोई बदल नहीं सकता है.. शायद भगवान भी नहीं .. यह कहते हुये उसकी आँखें भर आई और वह बोली– ज़िंदगी मिले, ऐसी न दुबारा .... ।

मैं चाहता हूं कि इस कहानी में एक–दो किरदार ऐसे शामिल हो जायं जो रमैया की जिंदगी के इर्द–गिर्द हों और उसे कोई सही राह दिखा सके हों तथा उसके साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार रखते हों। मुहल्ले की कई स्त्रियों के दिल में रमैया के लिए दया और सहानुभूति का भाव जुगनू की मानिंद टिमटिमाता हुआ मुझे नजर आया। उन स्त्रियों में एक नम्रता भी है। एक अध्यापक की पत्नी। रमैया के प्रति नम्रता का लगाव दया एवं सहानुभूति की सरहदें पार कर गया है, दोनों ही एक दूसरे को अच्छी तरह से समझते–बूझते हैं।

इसी बीच नम्रता के पति घर आ गये थे। वे सीधे घर के अंदर चले गये और वहीं से आवाज दी–नम्रता ! अरे सुनो जी, यहां आओ। नम्रता–आती हूँ। आप हाथ–पांव धुल लीजिए, अभी मैं भोजन परस देती हूँ। मद्धिम आक्रोश भरे शब्दों में उद्वभव ने कहा– विचित्र हो तुम। इस पगली को मुंह लगा लिया है तुमने। जब देखो, घर बैठी मिलती है। कोई और काम नहीं है तुम्हें। पागल ठेठ को गले लगा लिया है। भगाओ

इसे। पत्नी को लगभग डांटते हुए उद्भव– अभी भगाओ इसे। नम्रता बहुत दुःखी हुई और कहा– ऐसा नहीं कहते हैं। कहाँ रोज आती है बेचारी, अरे गरीब है, दो रोटी खा लेगी, कुछ घट नहीं जायेगा। कभी कुछ मांगती नहीं है। बड़ी स्वाभिमानिनी है, लालची नहीं है। परिस्थितियों की मारी है। पति के घर निकाला के कारण आज भटक रही है। उद्भव ने टोकते हुए कहा– बड़ी चिंता है तुम्हें। उसके सुख–दुःख का ठेका ले रखा है क्या? नम्रता को पति की बातें ऐसी लग रही थीं जैसे कानों में पिघलता हुआ शीशा डाल रहा हो कोई।

नम्रता बोली–आप पढ़ें–लिखे व्यक्ति हैं, आपको इस तरह बोलना शोभा नहीं देता है। शांत रहिए। वह बाहर बैठी है, सुन लेगी। क्या कहेगी? इतने बड़े आदमी और ऐसा छोटा विचार। कहते हुए नम्रता घर के बाहर आ गयी थी। रमैया वहां नहीं दिखाई दी। सड़क के पूरब और पश्चिम दोनों छोरों पर नम्रता ने अपनी दृष्टि दौड़ाई, पर वह कहीं नहीं दिखाई दी। नम्रता का मन उदास हो गया था। उसके चेहरे पर चढ़ी उदासी को उद्भव ने पहचान लिया।

मौके की नजाकत भांपकर उद्भव ने बात का नया सिरा नम्रता को पकड़ाना चाहा। पर नम्रता का मन दुःखी हो गया था। नम्रता ने उदास स्वर में कहा, आप भोजन कर लीजिये। और तुम? भोजन नहीं करोगी? बाद में करूंगी। क्यों? नम्रता चुप रही। पलभर बाद नम्रता बोली, आप खाइए। कुछ दबे मन से बोली–''रमैया को दो रोटी खिला दूँ, आज गुरूवार का व्रत है मेरा।'' उद्भव चुप रहे। दोनों छोर पर, नट के खेल सी चुप्पी की डोर तनी रही। उद्भव की मंशा खराब नहीं थी। उनका सोचना था कि पहले हम दोनों भोजन कर लें और बाद में उसे खाना खिला दिया जायेगा। लेकिन नम्रता तो ठान कर बैठ गयी थी कि उसे खिलाये बिना वह खाना नहीं खायेगी। उलझनें से बेहतर है चुप हो जाना, यही सोच–समझकर और नम्रता की जिद के सामने उद्भव ने अपने हथियार डाल दिए।

उद्भव चुपचाप उठे और घर के बाहर निकल गये। नम्रता की ओर देखते हुए, जाकर देखता हूँ, कहाँ गयी रमैया? उसका कोई स्थाई ठिकाना भी तो नहीं है। आखिर में वह कहाँ मिलेगी। हाँ, पड़ोस में लगे टावर के पास जाकर देखता हूं। टावर ही उसका ठिकाना है। उसका निशान वहां दिखाई देगा। फटी–पुरानी साड़ियों का बाड़ा। मुहल्ले की महिलाओं ने जो पुरानी साड़ियां उसे दी थीं और अब उसके पहनने लायक नहीं रह गईं। नंगी जमीन पर बिछी फटी–पुरानी चटाई, आस–पास फैले हुए दो तीन बर्तन, मैली–कुचौली चद्दर, उगी हुई घास–फूस में मच्छरों का डेरा। यह देखकर उद्भव का मन उद्विग्न हो उठा था। वे सोच में पड़ गए–ऐसे में कैसे जी रही है यह औरत। धिक्कार है हम सभी को। इसकी सुधि लेने वाली नम्रता जैसी कुछ औरतें हैं जो उसके दुःख को समझती हैं। बाकी समाज का क्या लेना–देना है रमैया से? रमैया के संदर्भ में पत्नी नम्रता से हुई नोंकझोंक को लेकर उद्भव को ग्लानि हुई। उद्भव ने टावर के पास जाकर देखा। वह नहीं दिखाई दी। वे दुखी हुए उद्भव को अकेले आता देखकर नम्रता निराश हुईं। वह समझ गयी कि रमैया इतनी आसानी से नहीं मिलेगी। उसके पैर एक जगह टिकते नहीं हैं। पता नहीं कहाँ चली गयी होगी। उद्भव निःशब्द थे, उनके पास कोई जवाब नहीं था।

नम्रता खिन्न हुई और कहा–कहा था न मैंने, उसे पहले खिला दिया होता, फुरसत मिल गयी होती। अब उसे ढूंढ़ना आसान नहीं है। घर के बाहर उद्भव और नम्रता के बीच रमैया को लेकर बातचीत हो रही थी, तभी उद्भव को चौरसिया के घर की तरफ से आती हुई रमैया दिखाई दी। देखो! वो आ रही है रमैया। उद्भव ने उसकी ओर देखकर कहा।

रमैया को देखकर नम्रता खुशी से उछल पड़ी। उद्भव ने आवाज दी, रमैया! ओ रमैया!! यहाँ आओ, दीदी बुला रही हैं। रमैया की ओर से भी जवाब आया, हाँ भइया! आती हूं। और मिनट भर में वह नम्रता के पास आकर खड़ी हो गई थी। उसके हाथ में पालीथीन थी, जिसमें खाने की कोई वस्तु थी। यशोदा सीढ़ियों के पास आकर बैठ गयी थी। नम्रता ने रमैया के हाथ में भोजन का पैकेट थमा दिया और कहा कि खाना खा लो, कहीं जाना नहीं, यहां बैठ जाओ। एक गिलास पानी भी रख दिया। रमैया बाहर चबूतरे पर बैठ गई थी। बहुत इत्मीनान से उसने भोजन की पोटली खोली और पूड़ी–तरकारी खाने लगी। प्लास्टिक की कटोरी में रखी खीर उसे बहुत स्वादिष्ट लगी। रमैया ने नम्रता की ओर देखकर कहा, बहुत अच्छा बनाया है। रमैया अपने जीवन का स्वाद भले ही भूल गयी है, पर भोजन का स्वाद अभी भी उसकी जिह्वा पर बना हुआ है। रमैया भोजन करते हुए नम्रता को कृतज्ञता के भाव से देखती रही। वहां उद्भव भी आ गए थे। दोनों को रमैया को भोजन करते हुए देखकर अपार सुख मिल रहा था। ◆

पता : प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी एवं संस्कृत विभाग

डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर , मध्यप्रदेश

मो. : 9425656284

व्यथा कथा

❑ महेन्द्र भीष्म

सुनिए जी! आप, आम के टोकरे गाड़ी में रखवाइए। मुझे अभी दस मिनट और लगेंगे।'' नन्दा ने मुस्कुराते हुए अपने पतिदेव हरीश कुमार से कहा, जो हाल ही में जनपद न्यायाधीश के पद से अवकाश ग्रहण कर जिला उपभोक्ता फोरम में अध्यक्ष पद पर नियुक्त हुए हैं।

हरीश जी स्वयं तैयार होने के बाद से ही अपनी छड़ी के सहारे ड्राइंगरूम में धर्मपत्नी नन्दा की प्रतीक्षा में चहल–कदमी कर रहे थे। वैवाहिक जीवन के पड़ाव वर्ष दर वर्ष गुजरते जाते हैं, इसमें धर्मपत्नी के तैयार होने के साथ के इंतजार की झल्लाहट का अपना अलग ही अंदाज़ बना रहता है, जिसे शादीशुदा जोड़े बेहतर समझ सकते हैं।

''आम के टोकरे कबके गाड़ी में रखवा दिए हैं। खरे जी को साढ़े पाँच बजे का समय दिया है।'' हरीश ने दीवार घड़ी की ओर देखा। शाम के पाँच बज रहे थे, ''जल्दी करो भाई! रास्ते में भी पन्द्रह–बीस मिनट लग जाएंगे।'' समय के पाबन्द हरीश ने कलाई घड़ी में देखा मिनट की सुई पाँच मिनट आगे थी, उन्होंने दीवार घड़ी से समय मिलाकर अपनी रिस्टवाच की सुई सही की। सेलफोन के युग में कलाई घड़ी का उपयोग नगण्य रह गया है, पर हरीश कुमार जी बिना रिस्टवाच पहने घर से कभी बाहर नहीं निकलते थे। रिस्टवाच ही क्यों? उन्हें अपना व्यक्तित्व तब तक सम्पूर्ण नहीं लगता, जब तक कि वे मोजे–जूते, जेब में रुमाल, कंघी, बाईं कलाई पर घड़ी नहीं पहन लेते। उनकी दाहिनी कलाई में कलावा के अलावा स्वर्णमंदिर अमृतसर से प्राप्त कड़ा तो स्थाई रूप से रहता ही था।

जेठ मास का उत्तरार्द्ध चल रहा था। देर रात आँधी, फिर पानी बरसने से उमस भरी गर्मी से छुटकारा मिल गया था। बेमौसम की बरसात में दोपहर भी पानी बरसा था। आसमान में बादलों की आवाजाही सुबह से चल रही थी। हरीशजी ने पूर्व योजना के तहत आम के दो टोकरे मँगवा लिए थे, जिसे वे दोनों आदिल नगर स्थित वृद्धाश्रम में लेकर जाने वाले थे। नगर निगम का यह वृद्धाश्रम गायत्री परिवार द्वारा संचालित है। प्रत्येक माह के द्वितीय शनिवार के अवकाश में हरीश अपनी धर्मपत्नी नन्दा के साथ अनाथालय, बाल–सुधार गृह, नारी–निकेतन या

वृद्धाश्रम जाकर खाने–पीने, पहनने–ओढ़ने या जीवन–उपयोगी सामान के साथ पहुँच जाते। वहाँ के हाल–चाल लेते, उनके साथ कुछ वक्त बिताते। नन्दा घर में ही दो–तीन अपने जैसी मौहल्ले की सहेलियों के साथ स्लम के बच्चों को पढ़ाया करती थी। हरीशजी भी ड्यूटी से आकर बच्चों को गणित के सवाल हल करवाते और नैतिक शिक्षा दिया करते थे।

''लो जी चलो देखो! ठीक लग रही हूँ न।'' नन्दा पति से प्रशंसा चाहती थी, जो उसे सदैव एक अलग अंदाज़ में मिलती रहती थी। वह अंदाज़ था हरीश जी का गोल होते होठों से निकली मद्धिम स्वर की सीटी, जो बाँसुरी से भी मीठी, कर्णप्रिय होती, जिस पर नन्दा सौ–सौ बार वारी हो जाने को तैयार रहती।

घरेलू कार्य देखने वाले कार ड्राइवर कमलेश की पत्नी नीलम को नन्दा ने आदत के अनुसार हिदायतें दीं और कार का शीशा चढ़ा लिया। कमलेश व नीलम अपने जुड़वाँ बच्चों के साथ सर्वेंट क्वार्टर में रहते थे। उनके दोनों बच्चे इसी साल से स्कूल जाने लगे थे। वे दोनों अपने परिवार के साथ खुश थे। कमलेश कार ड्राइविंग व बागवानी के अतिरिक्त घर के अन्य आवश्यक कार्य पूरी लगन व निष्ठा से करता था, जबकि नीलम घर के सारे कार्य झाड़ू–पोंछा–बर्तन–कपड़े से लेकर पूरे घर की साफ–सफाई देखती थी। भोजन नन्दा स्वयं बनाती थी। दोनों बेटियाँ ब्याह के बाद से ही अमरीका में सेटल हो गईं थीं। वर्ष में एक बार बेटियाँ अपने परिवार के साथ बारी–बारी से भारत आतीं। पन्द्रह दिन ससुराल तो पन्द्रह दिन उनके पास रह जातीं। वह समय पूरे साल की कमी तो पूरा नहीं कर पाता, पर बहुत खुशी और संतोष दे जाता। बेटियों की खुशी में उनकी खुशी निहित रहती। नाती, नातिनों की टूटी–फूटी हिंदी और अंग्रेजी का अमरीकी उच्चारण उन्हें बहुत भाता। नन्दा व हरीश जी अमेरिका तीन–चार बार जा चुके थे, परंतु उन्हें अपना देश ही पुसाता था। थकान भरी उबाऊ हवाई यात्रा उस पर अमेरिका की अत्याधुनिक पाश्चात्य संस्कृति वाली जीवन शैली उन्हें कतई रास नहीं आती थी।

जेठ मास का चल रहा था। देर रात आँधी, फिर पानी बरसने से उमस भरी गर्मी से छुटकारा मिल गया था। बेमौसम की बरसात में दोपहर भी पानी बरसा था। आसमान में बादलों की आवाजाही सुबह से चल रही थी। हरीशजी ने पूर्व योजना के तहत आम के दो टोकरे मँगवा लिए थे, जिसे वे दोनों आदिल नगर स्थित वृद्धाश्रम में लेकर जाने वाले थे। नगर निगम का यह वृद्धाश्रम गायत्री परिवार द्वारा संचालित है।

'अभिवादन शीलस्य नित्यः वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्।।'

(जो सुशील और विनम्र होते हैं, बड़ों का अभिवादन व सम्मान करने वाले होते हैं तथा अपने बुजुर्गों की सेवा करने वाले होते हैं। उनकी आयु, विद्या, कीर्ति, और बल इन चारों में वृद्धि होती है।)

वृद्धाश्रम के मुख्यद्वार के अंदर पोर्टिको में अपनी कार से उतरते ही हरीश जी व नन्दा की दृष्टि इस श्लोक पर पड़ी। श्लोक व उसके भावार्थ को पढ़ते दोनों के हृदय भावपूर्ण श्रद्धा से भर उठे। वृद्धाश्रम के संचालक मेजर विजय कुमार खरे अपनी रौबदार श्वेत घनी मूँछों के साथ अपने कक्ष से बाहर आकर आत्मीयता से बोले, ''प्रणाम! आइये जज साहब! इस आश्रम में आपका हृदय से स्वागत है। आप दोनों के पधारने से मुझे बहुत खुशी हुई है।''

''प्रणाम! मेजर साहब!'' हरीशजी व नन्दा ने हाथ जोड़ लिए।

अपने कक्ष में जलपान कराते हुए मेजर खरे ने वृद्धाश्रम के बारे में विस्तार से जानकारी दी। जलपान के बाद वे उन्हें पुस्तकालय, गायत्री मन्दिर, भोजनालय दिखाते हुए वहाँ संचालित होने वाले कार्यक्रमों पर प्रकाश डालते रहे।

नन्दा व हरीश अपने से अधिक उम्र के वृद्धजनों के मध्य आकर स्वयं को युवा अनुभव कर रहे थे। विस्तृत तिकोने मैदान के तीनों ओर ऊँचे बरामदे के समानांतर वृद्धजनों के रहने के लिए कक्ष बने हुए थे। प्रत्येक कक्ष में अटैच बाथरूम था। बाहरी दरवाज़े पर खुली बालकनी भी थी, जहाँ कपड़े सुखाने के साथ–साथ जाड़े की धूप में बैठा जा सकता था। मेजर खरे ने बताया कि, ''इस वृद्ध आश्रम में जो सक्षम हैं, उनसे एक निर्धारित धनराशि प्रत्येक माह प्राप्त होती है और जो निर्धन वृद्धजन हैं, उन्हें डोरमेट्री में सामूहिक रहना होता है। प्रत्येक पलंग के साथ एक छोटी अलमारी दी जाती है। उनका शौचालय व स्नानघर सामूहिक रहता है। आश्रम में विभिन्न संस्थाएं व संपन्न लोग सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन भी कराते हैं। मकर संक्रति, होली, रक्षाबन्धन, गुरुपूर्णिमा, विजयादशमी व

दीपावली के त्योहारों के अतिरिक्त गणतन्त्र दिवस व स्वतंत्रता दिवस जैसे राष्ट्रीय पर्वों पर यहाँ वृद्धजनों से भद्रजन आकर मिलते हैं और उन्हें मिठाइयां व अन्य दैनिक उपयोग की वस्तुएं प्रदान करते हैं। आप जैसे कई दयालुजनों के यहाँ पधारने से वृद्धजन भी प्रसन्न होते हैं। उनमें उत्साह एवं ऊर्जा भर जाती है। आप दोनों माह में कम से कम एक दो बार समय निकालकर अवश्य आया कीजिए। मैं आपको अब से यहाँ पर आयोजित होने वाले कार्यक्रमों की नियमित सूचना व्हाट्सएप से दे दिया करूँगा, जिसमें भी आपका मन और समय हो सहमति दें। आप अवश्य पधारें।''

बात करते–करते वे सब वृद्धजनों के लिये बने पुस्तकालय में कुछ देर के लिये बैठ गए। करीने से बुक शेल्फ में लगीं पुस्तकों व वहाँ की साफ–सफाई से हरीश व नन्दा गदगद हो उठे, उन्हें पुस्तकालय की व्यवस्था देख रहे महानुभाव का स्वभाव भी बहुत अच्छा लगा। मेजर खरे ने परिचय कराते हुए बताया कि, आप से मिलिए आप श्री रामचंद्र श्रीवास्तव हैं और 'माहिर' के उपनाम से शेरो–शायरी भी करते हैं। हरीशजी के आग्रह पर माहिर साहब ने स्वरचित कुछ शेर प्रस्तुत किए –

''जो पेड़ साया देते हुए बूढ़ा हो गया।
उसी को काटने को लोग बेताब हैं।।
जिन पर मैंने अपनी सारी दौलत लुटा दी।
इन्हीं वारिसों ने कफन मुझे माफ कर दिया।।
हुजूर मेरी कब्र पर इसलिए नहीं आता है,
कहीं उसे देख कर जिंदा न हो जाऊं।''

माहिर साहब ने आगे कुछ अन्य शेर भी सुनाए। इस बढ़ती उम्र में भी उनकी ऊर्जा देखते बनती थी। पुस्तकालय से निकलते हुए मेजर खरे ने बताया, ''माहिर साहब उत्तर प्रदेश शासन के सचिवालय से अनुभाग अधिकारी के पद से अवकाश प्राप्त हैं। दो बेटे हैं, जो इसी शहर में रहते हैं। पत्नी के गुजर जाने और बेटे बहुओं की उपेक्षा उन्हें यहाँ ले आई। उनकी शायरी में भी यही तंज़ व दर्द झलकता रहता है।

''काश! दो बेटों में एक बेटी होती।'' हरीश जी बोल पड़े।

''जी हाँ एकदम सही कह रहे हैं, आप! बेटी होती तो उन्हें कम से कम वृद्धाश्रम में तो नहीं ही रहने देती।'' अपने कक्ष में न ले जाकर मेजर खरे आगे बोले, ''आप से निवेदन है, भोजनालय पर आज बने हुए भोजन को ग्रहण करके ही यहाँ से प्रस्थान करें।''

मेजर खरे का आत्मीय आग्रह वे दोनों टाल न सके और मुस्कराते हुए भोजनालय में आ गए। भोजन–कक्ष साफ–सुथरा बड़ा–सा हॉल था, जिसमें करीने से कुर्सी–टेबिलें लगी हुई थीं। एक लंबा काउंटर बना था, जिस पर से भोजन–सामग्री को स्वयं लेना होता है। पास में ही साफ वाश–बेसिन व उसके ऊपर एक बड़ा–सा दर्पण लगा हुआ था। हॉल से अंदर का रास्ता रसोईघर को गया था। मेजर खरे ने उन्हें रसोई घर भी दिखलाया। यहाँ पर सफाई के साथ भोजन तैयार करने की सामग्री, सब्जियाँ, फ्रिज़ व एक एग्जास्ट फैन रसोई घर में लगा हुआ था। वापस भोजनकक्ष में आकर सभी अपनी टेबल के सामने रखी कुर्सी पर बैठ गए। भोजन परोसा गया। भोजन परोस रहे वृद्ध को देखकर हरीश जी को बार–बार कुछ याद आ रहा था। अपनी स्मरण–शक्ति पर ज़ोर देते हुए हरीश जी से रहा नहीं गया और भोजन के बाद उन्होंने मेजर खरे से उस वृद्ध के बारे में जानकारी चाही। हरीश जी जिस बात को लेकर अपने स्मृति–पटल पर जोर दे रहे थे। जानकारी मिलने से वह और पुख्ता हो गई अर्थात यह वही व्यक्ति है, जिसके बारे में वह सोच रहे थे। मेजर खरे के कक्ष में आकर हरीश जी ने उस वृद्ध से मिलने की इच्छा जताई। मेजर खरे ने तुरंत अपने कक्ष में भोजन परोस रहे वृद्ध को बुलवाया।

लगभग बहत्तर वर्षीय वृद्ध नानक दास, मझोला कद, गौरवर्ण, श्वेत दाढ़ी–मूँछ, श्वेत धवल धोती–कुर्ता पहने, कन्धे

मेजर खरे का आत्मीय आग्रह वे दोनों टाल न सके और मुस्कराते हुए भोजनालय में आ गए। भोजन–कक्ष साफ–सुथरा बड़ा–सा हॉल था, जिसमें करीने से कुर्सी–टेबिलें लगी हुई थीं। एक लंबा काउंटर बना था, जिस पर से भोजन–सामग्री को स्वयं लेना होता है। पास में ही साफ वाश–बेसिन व उसके ऊपर एक बड़ा–सा दर्पण लगा हुआ था। हॉल से अंदर का रास्ता रसोईघर को गया था। मेजर खरे ने उन्हें रसोई घर भी दिखलाया। यहाँ पर सफाई के साथ भोजन तैयार करने की सामग्री, सब्जियाँ, फ्रिज़ व एक एग्जास्ट फैन रसोई घर में लगा हुआ था।

पर पड़े भगवा अँगोछे से नानक दास ज्ञानी संत दिख रहा था। हरीशजी ने अपने पास बैठाते नानक दास को बीस वर्ष पहले की याद दिलाई। नानक दास को सब याद आ गया।

माह नवंबर, वर्ष 2000 स्थान उत्तर प्रदेश के मैनपुरी जनपद में विशेष सत्र न्यायाधीश हरीश कुमार श्रीवास्तव की अदालत। वाद की पुकार हुई।

''राज्य बनाम नानक दास हाज़िर हों।''

नानक दास का मुकदमा आज 313 की अन्तिम बहस पर लगा हुआ था। नानक दास पहले ही भारतीय साक्ष्य अधिनियम सेक्शन 24 के अंतर्गत अपना अपराध स्वीकार कर चुका था। आरोप बहुत गम्भीर थे। अभियोजन पक्ष के द्वारा प्रस्तुत सभी साक्ष्य उसके विरुद्ध थे। नानक दास निर्विकार रूप से कृत अपराध की स्वीकारोक्ति व सभी साक्ष्यों में स्वयं की संलिप्तता एवं सहमति जताता चला गया। न्यायालय द्वारा मुकदमे की सुनवाई पूरी कर भोजनोपरांत अपना निर्णय देना सुनिश्चित किया गया।

न्यायाधीश हरीश कुमारजी अभियुक्त नानक दास को देख मन ही मन विचलित थे। उनकी अंतरात्मा यह स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थी कि इस भोले–भाले निर्दोष व्यक्ति के द्वारा एक नाबालिग लड़की के साथ बलात्कार कर उसकी हत्या कर दी गई हो। दफा 376 और दफा 302 के अभियुक्त नानक दास को हरीश कुमारजी ने अपने विश्राम कक्ष में बुलाने के लिए अपने पेशकार को आदेश दिया। न्यायालय में बैठा नानक दास बुजुर्ग दीवान के साथ विश्राम कक्ष में प्रस्तुत हुआ। हरीश कुमारजी ने सबसे पहले दीवान से पूछा, ''दीवानजी आपकी उम्र कितनी है?''

नन्दा व हरीश अपने से अधिक उम्र के वृद्धजनों के मध्य आकर स्वयं को युवा अनुभव कर रहे थे। विस्तृत तिकोने मैदान के तीनों ओर ऊँचे बरामदे के समानांतर वृद्धजनों के रहने के लिए कक्ष बने हुए थे। प्रत्येक कक्ष में अटैच बाथरूम था। बाहरी दरवाज़े पर खुली बालकनी भी थी, जहाँ कपड़े सुखाने के साथ–साथ जाड़े की धूप में बैठा जा सकता था। मेजर खरे ने बताया कि, ''इस वृद्ध आश्रम में जो सक्षम हैं, उनसे एक निर्धारित धनराशि प्रत्येक माह प्राप्त होती है और जो निर्धन वृद्धजन हैं, उन्हें डोरमेट्री में सामूहिक रहना होता है। प्रत्येक पलंग के साथ एक छोटी अलमारी दी जाती है। उनका शौचालय व स्नानघर सामूहिक रहता है।

सैल्यूट करने के बाद दीवान ने जवाब दिया, ''हजूर! उनसठ साल आठ महीने''

''पुलिस की नौकरी में आए तुम्हें कितने वर्ष हुए हैं?''

दीवान ने जवाब दिया, ''हजूर! चार महीने बाद मेरा रिटायरमेंट है, चालीस साल की सेवा हो जाएगी।''

''अच्छा तुम्हारा नाम क्या है?''

''हजूर हुकुम सिंह।'' दीवान ने जवाब दिया।

''अच्छा हुकुम सिंह! मुझे यह बताओ यह जो मुलजिम है, क्या तुम्हें लगता है कि इसने एक नौ वर्ष की अबोध लड़की के साथ दुष्कर्म किया होगा?.. और उसकी हत्या भी की होगी?'' हुकुम सिंह इस प्रश्न के लिए तैयार नहीं था। कुछ देर बाद जब न्यायाधीश हरीश कुमारजी ने प्रश्न दोहराया तब वह बोला, ''हुजूर! मेरी चालीस साल की नौकरी में मैंने अभी तक ऐसे मुलजिम को नहीं देखा है। इस व्यक्ति को मैं पिछले डेढ़ साल से जान रहा हूँ। यह दुष्कर्म और हत्या करेगा ऐसा मुझे नहीं लगता है। इसके कार्यकलाप व व्यवहार देख कर मुझे लगता है यह पूरी तरह से निर्दोष है और पता नहीं क्या कारण है कि यह इस अपराध को स्वीकार कर रहा है। जहाँ तक मेरा मत है, मैं दृढ़ विश्वास से कह सकता हूं कि यह निर्दोष है, फिर आगे हजूर जैसा समझें।''

हरीश कुमार सोच में पड़ गए, उन्होंने अभियुक्त नानक दास से भी प्रश्न किया, ''मेरे इस कक्ष में निर्भय होकर बताओ क्या यह दुष्कर्म तुमने किया है? यदि नहीं किया है, तो बिना भय के बताओ तुम्हारी विधि सम्मत मदद की जाएगी। मुझे नहीं लगता कि तुमने ऐसा जघन्य अपराध किया होगा?'' हरीश कुमार के प्रश्न का कोई उत्तर नानक दास ने नहीं दिया।

हरीश कुमारजी ने नानक दास के निकट जाकर उसके कंधे पर हाथ रखा और उससे पुनः कहा कि, ''तुम पूरी तरह से निर्भय होकर बताओ! किसी के भय या दबाव में ऐसा निर्णय तो नहीं ले रहे हो?''

नानक दास पल भर को अपने स्थान से थोड़ा हिला, फिर वह धीरे से बुदबुदाया, ''नहीं, हजूर! यह जो भी आरोप मुझ पर लगे हैं, वह सही हैं और मेरे द्वारा ही किए गए हैं।''

न्यायाधीश हरीश कुमार जी की अनुभवी आँखें यद्यपि

उसके झूठ को पकड़ रही थीं, तथापि उसके बयान के आगे वह बेबस थे। एक बार पुनः वे अभियुक्त नानक दास की ओर पलटे। उसकी आँखों में झाँका, आँखों में एक अजीब–सी बेबसी, एक अजीब–सा सूनापन उन्हें दिखाई दिया। कक्ष से बाहर जाते हुए नानक दास की आँखें हरीश की आँखों से पुनः टकराईं। अभियुक्त नानक दास की आँखें सजल हो आईं थीं। हरीश जी के मन में आया कि वह उसे रोक ले, पर बचाव का कोई भी रास्ता उन्हें दिखाई नहीं दिया और वह उसे नहीं रोक पाए।

अभियुक्त नानक दास के जाने के बाद न्यायाधीश हरीश कुमार ने वही किया, जो उन्हें साक्ष्य और बहस के दौरान सही लगा। अभियोजन पक्ष के द्वारा की गई फाँसी की माँग को खारिज करते हुए उन्होंने अभियुक्त नानक दास को आजीवन कारावास की सजा सुना दी।

मेजर खरे का आत्मीय आग्रह वे दोनों टाल न सके और मुस्कराते हुए भोजनालय में आ गए। भोजन–कक्ष साफ–सुथरा बड़ा–सा हॉल था, जिसमें करीने से कुर्सी–टेबिलें लगी हुई थीं। एक लंबा काउंटर बना था, जिस पर से भोजन–सामग्री को स्वयं लेना होता है। पास में ही साफ वाश–बेसिन व उसके ऊपर एक बड़ा–सा दर्पण लगा हुआ था। हॉल से अंदर का रास्ता रसोईघर को गया था। मेजर खरे ने उन्हें रसोई घर भी दिखलाया। यहाँ पर सफाई के साथ भोजन तैयार करने की सामग्री, सब्जियाँ, फ्रिज व एक एग्जास्ट फैन रसोई घर में लगा हुआ था।

टेबिल पर रखे गिलास का पानी पीने के बाद नानक दास ने आगे की जो आपबीती सुनाई वह इस प्रकार है –

''हुजूर! पिछले वर्ष 2 अक्टूबर, 2019 महात्मा गाँधी जी की 150वीं जयंती के अवसर पर लगभग बीस वर्ष की मेरी सजा पूरी होने पर मेरे अच्छे चाल–चलन एवं बढ़ती उम्र को देखते हुए मुझे व मेरी तरह अन्य कुछ कैदियों को रिहा कर दिया गया था। मेरी धर्मपत्नी का स्वर्गवास मेरी जेल अवधि में रहते हुए पहले ही हो चुका था। एकलौते पुत्र का विवाह हो चुका था, उसकी आठ वर्षीय जुड़वाँ बेटियाँ थीं। बेटे को तहसील में अमीन के पद पर नौकरी मिल गई थी। बेटे का घर परिवार देख मन को अपार प्रसन्नता हुई। मेरा समय पूजा–पाठ, गमलों, क्यारियों की निराई–गुड़ाई व पोतियों के साथ खेलने में सुखमय बीतने लगा था।''

नानक दास ने एक घूँट पानी पीने के बाद आगे बताया, ''हुजूर! एक दिन संध्या बेला पर मेरी दोनों पोतियाँ घर के आँगन में मेरे संग खेल रहीं थीं। मेरी बहू उसी समय बाजार से लौटी थी। वह एकाएक हमें खेलते देख भड़क उठी, ''बाबूजी! आपको शर्म नहीं आती। एक पोती को गोद में दूसरी को पीठ पर बैठाये हो। जेल से लम्बी सजा काटकर आये हो, पर आपकी गंदी आदत नहीं गई। अपनी ही पोतियों के साथ ....''

''बहू! यह तुम क्या कह रही हो? भला! मैं ऐसा क्यों करूँगा? तुमने..''

''खबरदार! जो आइंदा मेरी बेटियों को छुआ भी।'' कहते हुए बहू दोनों पोतियों को मुझसे खींचकर अंदर ले जाने लगी, तभी मेरा बेटा ऑफिस से आ गया। बहू ने तीखे शब्दों में बेटे को सुनाते हुए कहा, ''देख लो! अपने बाबूजी को आज अपनी पोतियों को गोद में बैठाले थे। कल पता नहीं उनके साथ क्या कर डालें। अपने कुकर्मों से जी नहीं भरा जो.. ये तो मैं आ गई और देख लिया नहीं तो पता नहीं यह बुढ्ढा क्या गुल खिलाता।'' बहू बेहद रोष में बोले जा रही थी। बेटे ने आव देखा न ताव बहू के सामने एक तेज झापड़ मुझे मार दिया। मैं लड़खड़ाकर गिर पड़ा। मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा था। आँगन में पड़ा मैं कुछ सोचता, तभी बेटे ने मुझे उठाया और बाहर के कमरे में पड़े दीवान पर बैठाते रोते हुए मुझसे बोला, ''बाबूजी! मुझे माफ कर देना। मैं जानता हूँ आप निर्दोष हैं। आप ने मेरे पाप की सजा अपने ऊपर लेकर भुगती है। आप अपनी बहू को कुछ नहीं बताना, नहीं तो बाबूजी! सब खत्म हो जायेगा।''

बेटा घुटनों के बल मेरी गोद पर सिर रखे बिलख रहा था। अपने अंदर घुमड़ रहे जज्बातों को दबा, अपने आँसुओं को रोक मैंने उसके सिर पर हाथ रखते हुए धीरे से कहा था, 'बेटा! तुम मुझे वृद्धाश्रम छोड़ आओ!' अगले दिन से मैं यहीं पर हूँ।''

सभी नानक दास की व्यथा–कथा सुन मौन रह गए, पर पूर्व जनपद न्यायाधीश हरीश कुमार जी की सजल हो आईं आँखें बहुत कुछ बयां कर रहीं थीं। ◆

पता : 1/251ए, विराट खंड, गोमतीनगर,
लखनऊ–226010
मो. : 7607333001

एक कतरा हंसी

❑ आशा पाण्डेय

रात बीतने में अभी घंटा भर शेष है,किंतु राजन चौंक कर उठ बैठा। उसके उठने से उसके बगल में सोया रघुबीर पहले तो कुनमुनाया फिर चादर खींच कर ओढ़ ली और करवट बदल कर दुबारा सो गया।

नींद के रेशे राजन की पलकों पर भी लदे हैं। उसका मन भी हो रहा है कि वह भी चादर तान कर सो जाये, पर डर के मारे कि नींद कहीं गहरी न लग जाये और उठने में देर न हो जाये, वह आँखों को मलता हुआ बैठा ही रहा।

जब गाँव में था और बाबू थे तब वह कभी सुबह दस बजे के पहले नहीं उठा था। शुरू–शुरू में बाबू नाराज होते थे, पर राजन उनसे बराबरी से लड़ता था। बाबू जितनी जोर से उसे डाँटते वह उससे दुगनी तेज आवाज़ में उनसे लड़ पड़ता था। बाबू को उसने कभी महत्व नहीं दिया। अपनी अधूरी इच्छाओं के लिए, घर के अभाव भरे जीवन के लिए वह बाबू को ही दोषी मानता था। उसे बाबू की मेहनत,उनके संघर्ष, उनके दिये सुख रत्ती भर भी याद नहीं रहते थे। बाबू कभी गिनाते तो वह उपहास से मुँह टेढ़ा कर लेता था। कई बार बाप–बेटे में बड़ी जोर की बहस हो जाती थी। माँ डर जाती थीं। बाबू से उसका लड़ना माँ को बहुत खराब लगता था। वह समझाती, 'कैसा खड़ा जवाब दे देता है राजन, ये भी नहीं सोचता कि वो तेरे बाप हैं ? उन्हीं की बदौलत तू आराम फरमा रहा है ...

'पता है सब, कितना आराम दिये हैं मुझे ... और तू भी, पीछे पड़ी रहती है मेरे ...फिर से तेरी चिख–चिख शुरू हो गई ! दिन भर शुरू रहेगी अब तू ... डांट–मार कर तुम दोनों ने मेरा पूरा बचपन खराब करके रख दिया ... कभी चैन से जीने नहीं दिया तुम लोगों ने।' राजन बीच में ही चिल्ला उठता और फिर गिना डालता कि कब–कब उसे बाबू ने मारा था और कब–कब माँ दिन–दिन भर उसके पीछे पड़ी रहती थी। माँ कहना चाहती कि बचपन में पड़ी माँ–बाप की डांट–मार को जीवन भर पकड़ कर नहीं चलना चाहिए ! ...कि तूने कभी सोचा ही नहीं कि जिन बातों के लिए डाँटा जा रहा है उन्हें बार–बार दोहराए न... कि बार–बार कहने, डांटने पर भी तू वही करता था जो तुझे करना रहता था, खीझ कर रह जाते थे हम लोग ...कि आज तक तू कुछ नहीं सुनता ...कि बीस वर्ष का हो गया है, तूने कब बेटा होने का फर्ज़ निभाया ? ... कि एक बात भी ऐसी बता दे, जब तूने माँ–बाप का मान रखा हो, कभी कोई बात मान ली हो। कहना ये भी चाहती थी और कई बार कहा भी कि हम लोगों ने तेरे साथ अच्छा भी तो बहुत किया है उसे क्यों याद नहीं रखता ? पर अब ये सब कहने की कोई गुंजाइश नहीं थी, सिर्फ बात बढ़ती थी, बहस

बढ़ती थी। कुछ जहर बुझे शब्द और सुनने पड़ते थे उसे।

बाद के दिनों में वह चुप रहने लगी थी।

बाबू भी उससे उलझना नहीं चाहते थे, एक दिन का लड़ाई–झगड़ा कई दिनों तक चुभता रहता था सीने में। बार–बार प्रतिज्ञा करते कि अब उसके कुछ बोलने पर वो शांत रह जायेंगे, उबलता खून है, चढ़ती जवानी है, नहीं भिड़ेंगे उससे, पर गुस्सैल स्वभाव के तो बाबू भी थे, बर्दाश्त न कर पाते और राजन ! वह तो खोजता रहता था– उसे बाबू का उठना, बैठना, हँसना, बोलना सब खराब लगता था। बेसहूर लगते थे उसे बाबू। उनकी हर बात को सिरे से ख़ारिज करने में राजन को बहुत आनंद आता था। इसी तरह वह पटखनी पर पटखनी देता रहता था बाबू को।

बाद में बाबू ने उससे बात करना ही छोड़ दिया, इस तरह दूरी बन गई दोनों में।

ऊपर से सब कुछ शांत रहने लगा था, पर भीतर ही भीतर बाबू घुटते रहते थे। नींद गायब हो गई थी,उत्साह समाप्त हो गया था उनका।

कुछ देर तक राजन खोली (कमरे को यहाँ खोली ही कहते हैं) की दीवाल के सहारे पीठ टिकाये बैठा रहा फिर आलस छोड़ते हुए उठ कर खड़ा हो गया। खोली से कुछ दूरी पर एक शौचालय है। पूरी चाल के लोग वहीं जाते हैं। राजन भी गया। आज वहाँ लाइन नहीं है। लोग अभी जगे नहीं हैं। कल तो पूरे घंटे भर बाद नम्बर आया था उसका। पेट मरोड़–मरोड़ कर थक गया था। कितनी बार तो उसे लगा कि कहीं कोई अनहोनी न हो जाये। अपनी बारी के इंतजार में पूरी ताकत से खुद को सम्भाले खड़ा रहा था। पहली बार जाना उसने कि शहर के गरीब लोगों की जद्दोजहद सुबह शौचालय से ही शुरू हो जाती है। एक उसका गाँव था, दूर–दूर तक फैले खेत, बाग–बगीचे, भीटा, नाला–जहाँ चाहो बैठ लो– इस बात को लेकर अमीरी–गरीबी का कभी एहसास ही नहीं हुआ।

कल ही सोच लिया था उसने कि अब सुबह जल्दी उठकर इस कार्य से निपट लेगा।

शौचालय से निकला तो चार–पांच लोगों की लाइन लग चुकी थी सामने। राजन के निकलते ही लाइन में लगे पहले व्यक्ति ने उसे ऐसे घूरा जैसे मुँह अँधेरे शौचालय जाकर उसने कोई अपराध किया हो। सिर झुकाकर वहाँ से निकल आया राजन। उसका गाँव रहा होता तो वह इस तरह उसे घूरने वाले को देख लेता, लेकिन यहाँ परदेश में ! मन मसोस कर रह गया।

मजबूरी है उसकी, नहीं तो वह ही कहाँ चाहता है कि सुबह जल्दी उठे।

घर–गृहस्थी का बोझ अकेले उठाते–उठाते बाबू थक रहे थे और चाहते थे कि राजन किसी काम से लग जाये। पड़ोस में रहने वाला कन्हाई ने टेम्पो खरीद लिया था और गाँव से शहर के बीच सवारी ढोता था। बाबू चाहते थे कि राजन कन्हाई से टेम्पो चलाना सीखे और कहीं ड्राइवर की नौकरी पकड़ ले– गाँव के सूने चकरोट पर सीख सकता है–उन्होंने कन्हाई से बात भी कर ली, पर राजन अड़ गया, 'क्या होगा सीख कर ? कन्हाई का अपना टेम्पो है, शान से चलाता है। मैं कहीं दूसरों की ड्राइवरी करूं ? ये मुझसे नहीं होगा।'

'तू पहले सीख तो, नौकरी नहीं करना चाहता तो मत करना– अपना टेम्पो चलाना।'

'हुहूँ ... अपना टेम्पो चलाना, बोल तो ऐसे रहे हो जैसे कारू का खजाना गाड़ कर रखे हो। कहाँ से लाओगे अपना टेम्पो ? ... अपना टेम्पो ही लाना होता तो टांग तुड़ाकर थोड़ी बैठते।' तीखी और धारदार आवाज़ में राजन ने कहा, पर बाबूने खुद को छिलने से बचा लिया और धीमी आवाज़ में बोले–

'एक्सीडेंट से टांग टूटी थी ... चल छोड़, तू सीख ड्राइवरी। मैं कुछ खेत बेचकर खरीद दूँगा तेरे लिए टेम्पो।'

'खेत बेंचकर !' चिल्लाया वह।

'बाबा,दादा के खेत में जोड़े तो कुछ नहीं, बेचने के लिए तैयार हो ?' वह एक भी अवसर ऐसा नहीं छोड़ता था जिसमें बाबू को चारों खाने चित न कर दे।

बाप–बेटे की बहस सुनकर माँ बीच–बचाव के लिए उतरी थीं, तब जाकर शांत हुआ था राजन। वैसे टेम्पो सीखने की उसकी अपनी इच्छा भी थी, ड्राइवरी की नौकरी के लिए नहीं,अपनी खुशी के लिए, अपनी इच्छा के लिए।

दूसरे दिन से ही वह कन्हाई से टेम्पो सीखने लगा और पन्द्रह दिन में ही पूरी तरह पारंगत हो गया। अब वह कन्हाई के साथ टेम्पो चलाकर शहर जाता। शहर की रौनक, सिनेमा की बड़ी–बड़ी होर्डिंग, अच्छे कपड़ों में सजी–धजी लडकियाँ, सब उसे लुभाते। कन्हाई कभी–कभी उसे समोसा पकौड़ी का नाश्ता कराता, फिल्म दिखाता और कभी जब बहुत खुश होता तो अड्डे पर भी ले जाता, पर जिस दिन ऐसा होता उस दिन

उसकी झूमती चाल और बहकती आवाज़ से माँ का चैन छिन जाता और बाबू खून का घूंट पीकर रह जाते।

शहर की हवा लग गई थी उसे। रंगीन हो गई थी उसकी दुनिया। हालांकि कन्हाई ने शहर की सड़कों पर कभी उसे टेम्पो नहीं चलाने दिया। लाइसेंस नहीं था उसके पास इसलिए कन्हाई डरता था। वह लाइसेंस बनवाने की सोच ही रहा था कि एक रात अचानक बाबू दुनिया छोड़कर चले गए।

राजन अवाक था। पहली बार महसूसा था उसने कि बाबू एक घनी छाँव थे। सहारा थे। उनके सहारे ही वह उन्हें अकड़ दिखाता था। अब तीन छोटे भाई–बहनों और माँ की जिम्मेदारी उसके कंधे पर आ गई थी। एक बारगी बड़ा हो गया था राजन।

राजन के गाँव का रघुबीर मुंबई में किसी अफसर की गाड़ी चलाता था। एक चाल में उसकी अपनी खोली थी। वह छुट्टी लेकर गाँव आया था। राजन ने डरते–डरते उससे कहा, 'भैया, मुझे भी अपने साथ मुंबई ले चलो। ड्राइवरी मुझे आती है, कहीं रखवा देना ... बस, लाइसेंस नहीं है मेरे पास।' बात खत्म करते–करते उसका गला भर आया था।

रघुबीर ने उसके कंधे पर हाथ रखा, 'लाइसेंस की कोई बात नहीं, वह तो बन ही जायेगा ...एकाध महीना लगेगा और क्या। एजेंट से बनवा लो तो और जल्दी बन जायेगा। रही बात ड्राइवरी की तो वह न भी मिले तो और बहुत सी नौकरी है वहाँ... बस, मेहनत करनी पड़ेगी, यहाँ की तरह नहीं चलेगा कि सुबह से उठकर फटकारते हुए घूमो।'

'भैया, मैं पूरी मेहनत करूंगा।' राजन ने हाथ जोड़ लिए। रघुबीर के मुँह से शब्द नहीं छाँव निकल रही थी, जिसका रेशा–रेशा शीतलता में डूबा था । तपते दिनों में इस शीतलता ने उसे हिम्मत दी। तैयारी में जुट गया वह। कन्हाई के सहयोग से लाइसेंस भी बन गया। माँ को बताया तो माँ अनमनी हो गई,पर बोली कुछ नहीं।

गाँव में छुट्टी बिताकर जब रघुबीर जाने लगा तो राजन भी उसके साथ था।

कन्हाई ने टेम्पो से मोड़ तक छोड़ दिया था। वहाँ से इलाहाबाद जाकर मुंबई के लिए ट्रेन पकड़नी थी। मोड़ तक माँ भी आई थीं साथ। जब बस आई तो रघुबीर और राजन माँ का पैर छूकर बस पर चढ़ गए। बस आगे बढ़ी तो माँ वहीं सड़क किनारे बैठ कर फूट–फूट कर रोने लगीं। बस की खिड़की से देखा था राजन ने,फिर रास्ते भर वह भी छुप–छुपकर रोते हुए मुम्बई पहुँचा था।

खोली के बाहर एक कोने में बाल्टी मग्गा रखा है। भीतर जाकर राजन अपना ब्रश मंजन ले आया और बाल्टी मग्गा उठाकर सड़क के उस पार लगे नल पर आ गया। तीन–चार लोग यहाँ पहले से ही मौजूद हैं। कोई मंजन कर रहा है तो कोई नहा रहा है। राजन अपनी बारी का इंतजार करते हुए सोचने लगा, 'कैसा शहर है ये, हर जगह लाइन में लगना पड़ता है !

रात का धुंधलका छंटने में अभी समय है, किंतु सड़क पर अच्छी–खासी चहल–पहल शुरू हो गई है। जब राजन नहाकर खोली में लौटा तो रघुबीर सोकर उठ चुका था। रघुबीर के तैयार होने तक राजन ने स्टोव जलाकर रोटी सब्जी बना ली। दोनों नाश्ता ने किया, चाय पी और घर से निकल पड़े। किसी बड़े शहर को देखने का यह पहला अवसर है राजन का। वह चकित है– इतनी ऊँची–ऊँची इमारतें, भागती हुई गाड़ियाँ, लोकल ट्रेन, भागते हुए लोग और इन सब के बीच आज पहले ही दिन भागता हुआ राजन...!

रघुबीर उसका हाथ पकड़कर खींचता है, 'जल्दी चल, सात पांच की लोकल मिल जाएगी तो अच्छा रहेगा, उसमें भीड़ कम रहती है। राजन रघुबीर के साथ खिंचता हुआ दौड़ रहा है। भीड़ से धक्का खाते हुए, धकियाते हुए रघुबीर सात पांच की लोकल पकड़ने में कामयाब हो गया। भागकर उसने बैठने की जगह पकड़ी और इत्मीनान की साँस ली। हकबकाया–सा राजन भी रघुबीर के बगल में बैठ गया।

रघुबीर का एक दोस्त है, जो किसी सेठ के यहाँ टैक्सी चलाता है। पच्चीस टैक्सी है सेठ के पास। उसने रघुबीर को उम्मीद दिलाई है कि राजन को उसके सेठ के यहाँ काम मिल जायेगा। दादर रेलवे स्टेशन के पास मिलेगा वह। फिर वहाँ से सब उसके सेठ के घर जायेंगे।

बहुत से टेढ़े–मेढ़े प्रश्नों को पूछकर अंततः सेठ ने राजन को नौकरी पर रख लिया। तनख्वाह कम है, पर राजन खुश है– शुरुआत तो हुई। उस एरिया की सड़कों को समझने में उसे महीनों माथापच्ची करनी पड़ी। दूर की सवारी तो वह तभी लेता जब सवारी को रास्ते की जानकारी होती। पर धीरे–धीरे सब कुछ सहज हो गया और वह मुंबई की मुख्य–मुख्य सड़कों से परिचित होता गया।

रहता वह अब भी रघुबीर के साथ ही है। खोली का भाड़ा, बिजली का बिल और राशन का आधा पैसा वह रघुबीर को दे देता है। रघुबीर चाहता तो खोली का भाड़ा उससे न

लेता, क्योंकि खोली रघुबीर की ही है। रघुबीर के पिता ने उसे खरीदा था, पर यहाँ परदेश में गाँव वाला भाईचारा नहीं चलता। राजन समझता है सब, इसलिए वह आगे बढ़कर खोली का किराया दे देता है। खोली भी क्या है, थोड़ा–बहुत सामान रखने के बाद बमुश्किल दो जन सो सकें बस, इतनी–सी जगह ! पर मुंबई में यही बड़ी बात है और राजन के लिए तो बहुत बड़ी–रहने की जगह और रघुबीर का साथ।

पड़ोस की खोली में एक लड़की रहती है। बाहर आते–जाते समय कई बार राजन का आमना–सामना उससे हुआ है। शुरू–शुरू में तो एक दूरी थी दोनों के बीच, पर बाद के दिनों में लड़की उसे देख धीरे से मुस्करा देती। राजन को उसकी मुस्कान बहुत पवित्र और भोली लगती। जवाब में राजन भी मुस्कुराता लेकिन बाहर से ही। बाबू के जाने के बाद जिन्दगी की सच्चाइयों से जो सामना हुआ, उससे हंसी ठठ्ठा सब भुला गया राजन को। संघर्ष भरे उन कठोर दिनों में एक कतरा सच्ची हंसी के लिए तरसते राजन को लड़की की मुस्कान सहारा देती और गाँव के अच्छे दिनों में पले सपने को पंख लग जाते, पर कुछ देर के लिए। पैर के नीचे की भुरभुरी ज़मीन उसे सपने से खींच लाती और खड़ा कर देती हकीकत में और वह उस पवित्र मुस्कान को छोड़ ज़मीन को ठोस बनाने में लग जाता।

धीरे–धीरे राजन ने यह जान लिया कि लड़की गुजराती है और अपने माँ–बाप के साथ रहती है। एक भाई भी है उसे, जो कभी–कभी खोली में आता है, और जिस दिन उसका भाई खोली में आता है उस रात देर तक उस खोली से लड़ने–चिल्लाने और रोने की आवाज आती है। राजन का मन दु:ख से भर जाता है– कहीं लड़की ही न रो रही हो ! पर अगले दिन सुबह वही पवित्र मुस्कान उसे फिर से क्षण भर की खुशी दे देती।

छुट्टी का दिन था। रघुबीर और राजन दोनों खोली में थे। राजन बाल्टी लेकर नल पर गया। नल पर भीड़ थी। राजन लाइन में लग गया । जब उसकी बारी आई तो उसने अपनी बाल्टी नल के नीचे लगा दी। उसके बाल्टी लगाते ही पीछे से एक हट्टा–कट्टा युवक राजन को गाली देते हुए आगे बढ़ा और उसकी बाल्टी उठाकर सड़क पर फेंक दिया।

राजन अड़ गया, 'मैंने अपने नम्बर पर बाल्टी लगाई थी– क्यों फेंका?'

राजन के बोलते ही फुफकारता हुआ युवक आगे बढ़ा और राजन की गर्दन दबा दी– 'स्साले, अपने नम्बर पर ! तुम भैया लोग, इधर, हमारा गाँव में आकर नम्बर की बात करता है ? स्साला, हमारी रोजी–रोटी छीनता है ... हमारा पेट पर लात मार कर इधर रहेगा स्साला और हमें ही आँखें दिखायेगा ... अक्खा मुम्बई बजबजा रहा है सालों की गंदगी से।'

राजन की गर्दन पर युवक की पकड़ गहरी है। राजन छटपटाते हुए किसी तरह उससे अपनी गर्दन छुड़ाकर दूर खड़ा हो गया और गाली के जवाब में गाली देने लगा। उसके गाली देते ही वहाँ इकठ्ठी पूरी भीड़ राजन पर पिल पड़ी– औरतें भी आदमी भी। वह युवक सब को ललकार रहा है– 'मारो स्साले को...दिमाग खराब हो गया है स्सालों का।'

उसके ललकारते ही कई लोग राजन से भिड गए, लात–घूंसों से मारना शुरू कर दिया। चिल्ला राजन भी रहा है लेकिन उसकी आवाज़ अब घुट रही है।

'भैया लोग' 'भैया लोग' का शोर सुनकर रघुबीर खोली से बाहर निकला और परिस्थिति समझते ही दौड़कर नल पर आया भीड़ में घुसकर उस युवक के पैर पकड़ लिए– 'दादा भाऊ, माफ करो, गाँव से नया आया है, यहाँ का कायदा कानून नहीं समझता– मर जायेगा दादा भाऊ, दया करो।'

रघुबीर के बहुत हाथ–पैर जोड़ने पर उस दिन राजन की जान बची।

खोली में आकर रघुबीर ने तेल गरम करके उसमें हल्दी मिलाया और राजन की चोट पर लगाने लगा राजन के शरीर पर उभरे निशान रघुबीर के दिल को मथ रहे थे। कुछ देर बाद रघुबीर ने चुप्पी तोड़ी– 'उससे क्यों उलझ गया था तू ? ... वह बदमाश है।'

'मैंने अपनी बारी आने पर ही बाल्टी लगाई थी, उसने फेंकी मेरी बाल्टी– गाली दिया।' राजन की आवाज़ में अब भी आक्रोश बाकी है।

'यहाँ लोग यू.पी. के लोगों से चिढ़ते हैं।' रघुबीर की आवाज़ फुसफुसाहट में बदल गई।

'कुछ महीने पहले तो दंगा भड़क गया था यहाँ– कितनी टैक्सियों को तोड़–फोड़ डाला था, कितने लोगों की जान चली गई थी– लोकल में बैठे थे कुछ लड़के, अपनी तरफ के थे– मार डाला था उन्हें। एक लड़के को बस से खींचकर ...' राजन की आँखों में दहशत देखकर बात बदल दी रघुबीर ने, 'गलती मेरी है। मुझे पहले ही तुझे सावधान कर देना था। अब ध्यान रखना। ये लोग कुछ भी बोलें पर हमें चुप ही रहना है... भैया, दादा बोलकर अपना काम निकालना है।

घर–बार छोड़कर, इतनी दूर चार पैसा कमाने आये हैं हम लोग ... इन्हें हमारी मेहनत नहीं दिखती, हमारे संघर्ष नहीं दिखते, बस हमारा पैसा दिखता है।'

राजन खौफ से निढाल हो रघुबीर की बातें सुनता रहा। पहली बार जाना उसने कि यहाँ 'भैया' शब्द प्यार से नहीं हिकारत से बोला जाता है।

इस घटना के बाद राजन बहुत सावधान रहने लगा। टैक्सी वह पहले भी बहुत एहतियात से चलाता था, अब तो और भी ध्यान रखने लगा। एक दिन उसे मानखुर्द की सवारी मिली दो व्यक्ति थे। राजन उन्हें लेकर मानखुर्द पहुँचने ही वाला था कि अचानक उसकी गाड़ी के सामने एक बकरी का बच्चा आ गया। गाड़ी बहुत तेज़ नहीं थी, उसने जल्दी से ब्रेक लगाया,किंतु बकरी के बच्चे को टक्कर लग गई। पीछे बैठी सवारियों ने कहा, 'रुको नहीं, भागो, गाड़ी तेज़ करो।' सवारियां इस झंझट में उलझना नहीं चाहती थीं। उन्हें अपने गंतव्य पर जल्दी पहुंचना था, पर राजन से भागना नहीं हुआ। उसने एक्सीलेटर से पैर हटा लिए और रुक गया। उतरकर देखा–गनीमत थी कि बच्चा मरा नहीं था। उसने बच्चे को उठाया, वह लंगड़ा रहा था। अब तक सात–आठ लोग वहाँ इकठ्ठे हो गए थे। सड़क के किनारे एक झुग्गी बस्ती थी, वहीं से लोग आ रहे थे। एक लड़का आते ही टैक्सी के बोनट पर दो–चार डंडे जमा दिये। राजन भीतर ही भीतर सहम गया। यहाँ गाड़ी रोककर उसने गलती कर दी इसका एहसास भी हुआ उसे। उसने अपनी सवारियों की ओर देखा,पर ये क्या! सीट तो खाली है! आस–पास भी कहीं नहीं हैं वे लोग! भीड़ जुटते ही बिना किराया दिये उतरकर चले गए लगता है !

भीड़ बढ़ रही थी जिसे देख कर राजन की घबराहट भी बढ़ रही थी। लोग उसे घेरकर भला–बुरा कह रहे थे। वह सबसे हाथ जोडकर माफी मांग रहा था। बकरी के बच्चे के मालिक ने हर्जाने के रूप में पांच हजार रुपये की मांग की। राजन की जेब में सिर्फ डेढ़ हजार रुपये थे। उसने अपने सेठ को फोन किया। पहले तो सेठ ने राजन को बहुत डाटा–डपटा फिर किसी टैक्सी ड्राइवर से पैसे भिजवाये। पैसे पहुँचने में तीन से चार घंटे लग गए। लँगड़ाता हुआ बकरी का बच्चा इतनी देर में ठीक से चलने लग गया था, पर हर्जाना तो देना ही था, तभी वहाँ से छूट पाता राजन।

जब वह वहाँ से लौटकर टैक्सी जमा करने आया तो सेठ ने फिर से उसे खूब खरी–खोटी सुनाई और कहा, इतनी–सी बात उसे समझ में नहीं आती कि झुग्गी–झोपड़ी के नज़दीक से निकलते समय सावधान रहना चाहिए– ये तो बकरी का बच्चा था, लोग तो अपने बच्चे को भी धक्का देकर सड़क पर आगे कर देते हैं। कोई दुर्घटना घटने पर लाखों रुपये ऐंठते हैं।

'अपने बच्चों को!!' राजन भकुआया हुआ सेठ को देखने लगा। उसके लिए ये आश्चर्य की बात थी, वह इस आश्चर्य से निकल भी न पाया था कि सेठ ने दहाड़ लगाई– 'ये पांच हजार रुपये इस बार तेरी पगार से कट जायेंगे।'

'मेरी क्या गलती थी सेठ जी? अचानक हुआ था ये सब।' कहना ये भी चाहता था कि अगर भीड़ ने मेरे ही हाथ–पैर तोड़ दिये होते तब? पर आवाज़ दब कर रह गई उसकी। कुछ देर बाद उसने धीरे से मिन्नत की कि, पैसे न काटे और अगर काटना ही है तो एक बार में न काटे। धीरे–धीरे कुछ महीने में कटवा देगा वह, पर सेठ ने दो टूक जवाब दिया कि इसी महीने एक साथ ही कटेगा पूरा पैसा। उसे नौकरी करनी हो तो करे नहीं तो छोड़ दे।

... नौकरी छोड़कर कहाँ जाये राजन! नौकरी तो करनी ही पड़ेगी, यही तो उसकी मजबूरी है। उसने टैक्सी जमा की और खोली पर लौट आया। बहुत दिनों बाद आज वह जल्दी लौटा था। पड़ोस की खोली के सामने लड़की की माँ बहुत टूटकर रो रही थी। आस–पास खड़ी कुछ महिलाएं और पुरुष उसे समझा रहे थे। वहीं एक ओर एक लड़का खड़ा था।

राजन ने उस लड़के से पूछा– 'क्या हुआ भाई, ये क्यों रो रही हैं ?'

'इसका छोकरी किसी लड़का के साथ भाग गया।'

छोकरी ! मतलब वही मुस्कुराने वाली लड़की !! किसी लड़के के साथ ... यही तो बताया इस लड़के ने !! राजन सन्न रह गया– जैसे किसी मजबूत डोर का एक सिरा टूटकर उसके हाथ से छूट गया हो और वह अब गिरा कि तब गिरा !

कुछ देर तक वहीं खड़ा रह गया राजन फिर अपनी खोली में आ गया।

दोपहर की घटना, सेठ की डांट–डपट, पगार का कटना और उस पवित्र–सी हंसी वाली लड़की का भागना ... तूफान मचा है राजन के दिमाग में। इस खोली और इस नौकरी के प्रति गहरी उदासीनता ने उसे धर दबोचा है। उसने खोली का दरवाज़ा उड़काया, जूते उतारे और नीचे

बिछी दरी पर लेट गया। खोली की सीलन भरी गंध उसके नथुनों में समा रही है।

जब से इस शहर में आया है– नहीं, जब से बाबू गए हैं– संघर्ष उसका पीछा नहीं छोड़ रहा है। पहले जब बाबू कहते थे कि जीवन का गणित इतना आसान नहीं होता तब वो उनके ऊपर हँसता था– ज्ञान पिला रहे हैं, पर बाबू तो उसे जिन्दगी की कड़वी सच्चाई पिला रहे थे। कितना आसान था बाबू पर हँसना, उन्हें कुछ भी बोल देना और उनकी मेहनत की कमाई को खर्च करके ठाठ से रहना, गाँव भर में अकड़ कर घूमना !

वह बेसुध–सा पड़ा है। होश उसे तब आया जब खोली में खटपट की आवाज़ होने लगी– वह चौंककर उठ बैठा। रघुबीर स्टोव पर रोटी सेंक रहा है। राजन को उठा देखकर उसने पूछा, 'आज जल्दी आ गया तू ?'

राजन चुप है। रघुबीर ने अपना प्रश्न दोहराया। राजन ' हूँ' कहकर फिर चुप हो गया। रघुबीर समझ गया कि आज गहरी चोट लगी है इसे। रोटी सेंककर वह राजन के पास आया। उसके सिर पर हाथ रखकर पूछा, 'अब बता, क्या हुआ तुझे ?'

सिर पर रघुबीर का स्पर्श पाकर राजन का दिल भर आया। वह फूट–फूटकर रोने लगा और रोते–रोते ही दोपहर में घटी घटना से लेकर सेठ की डांट–डपट तथा पगार से एक बार में ही पांच हजार रुपये काट लेने की सारी बात बता दी।

रघुबीर ने उसे धीरज धराया और कहा, तू खोली के किराये और खोराकी की चिंता मत कर... धीरे–धीरे देते रहना। सब पटरी पर आ जायेगा एक दिन। उठ, जा हाँथ–मुँह धो ले और एक बाल्टी पानी ले आ नल से। ... ज़ोरदार सब्जी बनी है... आज तू भी मेरे साथ गिलास टकरा ले। मज़ा आ जायेगा। ऐसी गहरी नींद आएगी कि सुबह तक सारी समस्या छू मंतर हो जाएगी।" कहकर उसकी पीठ पर एक धौस जमाते हुए जोर से हँसा रघुबीर, पर राजन के दिल में दुःख गहरा धंसा है, इस हंसी से नहीं निकल पाया। जानता है राजन, खोराकी और किराये को धीरे–धीरे चुकाने पर भी उसका कई महीने का गणित गड़बड़ा जायेगा, पर अब कोई चारा नहीं है ... वैसे रघुबीर के प्रति उसका मन कृतज्ञ है।

वह उठा, बाल्टी लेकर नल पर गया। हाथ–मुँह धोया और पानी लेकर वापस आ गया। रघुबीर दो गिलास लिए बैठा उसका इंतजार कर रहा था। उसके आने पर एक गिलास उसने उसकी ओर बढ़ाया। राजन ने हाथ पीछे कर लिए, 'नहीं भैया, तुम पियो।' बाबू के न रहने के बाद से राजन ने शराब को हाथ भी नहीं लगाया था।

'अरे पी ले यार, एक दिन के पी लेने से तू पियक्कड़ नहीं बन जायेगा ... चल,पकड़– सारे गम गलत हो जायेंगे।' फिर शायराना अंदाज़ में झूम कर बोला, 'गम गलत करने के लिए गालिब ये ख़याल भी अच्छा है।' और गिलास को मुँह से लगा लिया।

बहुत ना नुकुर करने के बाद अंत में राजन ने भी दो पैग चढ़ा लिए। फिर दोनों ने मिलकर खाना खाया– बैगन की ज़ोरदार सब्जी और स्टोव पर सिंकी मिट्टी के तेल की गंध में रची रोटी।

रघुबीर भोजन करके लेट गया और जल्दी ही खर्राटे भरने लगा। राजन ने बरतन मांजे, स्टोव साफ किया, जहाँ बैठकर भोजन किया था उसे पोंछा। काम निपटाकर वह भी लेट गया। एक हल्की खुमारी उसके ऊपर भी चढ़ी थी, पर वह शीघ्र नींद में तब्दील न हुई। बहुत देर लेटे रहने के बाद उसे झपकी आनी शुरू ही हुई थी कि पड़ोस की खोली से लड़ने, चिल्लाने और रोने की आवाजें आने लगी। राजन उठकर बैठ गया। उस औरत का बेटा आया है, पीकर नशे में धुत है, बाप को बड़ी गंदी–गंदी गाली दे रहा है। राजन का मन उस लड़के के प्रति घृणा से भर गया– नालायक बेटा ! ... आज इसकी बहन भाग गई है फिर भी ये लड़ रहा है ! माँ–बाप कितना दुःखी होंगे ये भी नहीं सोच रहा है ! रुला रहा है माँ–बाप को !

एक फांस अटक गई राजन के मन में– उसने भी तो रुलाया था !

पुराने दिन चलचित्र की तरह घूमने लगे आँखों के सामने

...बहुत देर तक अटकी रही फांस।

उसने समय देखा, रात के दो बज रहे हैं। रघुबीर मज़े से सो रहा है। वह भी लेट गया और सोने की कोशिश करने लगा, पर नींद उससे कोसों दूर है।

.. आज उसे बाबू बहुत याद आ रहे हैं। ◆

पता : 5, योगिराज शिल्प, आई जी बंगला के सामने, कैंप, अमरावती–444602 (महाराष्ट्र)

मो. : 9422917252

प्रगति त्रिपाठी की कविताएँ

प्रगति त्रिपाठी

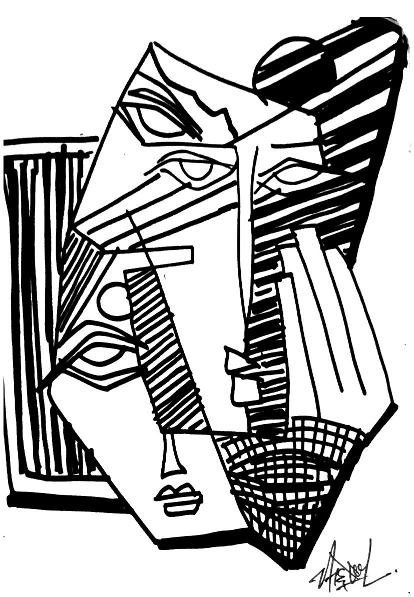

सारा आकाश

रोज सुबह रसोई में
खाने के साथ
पकाती है वो
कुछ आधे–अधूरे
नपे–तुले अनगिनत ख्वाब
धैर्य और संयम के साथ
जैसे धीमी आंच पर
बनाती है छप्पन पकवान।
कभी होंठों पर
मुस्कान छा जाती है
कभी चिंता की
लकीरें उभर आती है
पर पीछे नहीं हटती
विषय परिस्थितयों में भी
निरंतर कोशिश वो करती
गगन को छूने की
फिर जिंदगी से जद्दोजहद करके
एक दिन पा ही लेती है वो
सारा आकाश।

प्रेम से वंचित स्त्रियां

कुछ स्त्रियां जो
रहती है सदा
प्रेम से वंचित
स्नेह से दूर
बात बात पर सहती है तिरस्कार
हीन भावना से ग्रस्त
वो बन जाती है चट्टान सी
कठोर और चिड़चिड़ी
जब भी सुनती है
किसी स्त्री से पति – प्रेम की बातें
जता देती है असहमति
उनके लिए पति – प्रेम का अर्थ
सिर्फ देह की भूख है
क्योंकि हमेशा मिली
उन्हें उपेक्षा और दुत्कार
प्रेम शब्द उनके लिए
अर्थहीन और बेमानी है।

पीढ़ी

कहां आसान होता है
इक उम्र के बाद बदलना
जब बालों में सफेदी आ जाती है
कसे चेहरे पर झुर्रियां छा जाती है
शुरू से चलते आए रूढ़िवादी विचार
जेहन पर फेबीकॉल की
तरह चिपक जाते है
हर किसी की बस में
नहीं है पुराने विचारों
को त्याग नये विचारों
को ग्रहण करना
तब दो पीढ़ियों में
होता है संघर्ष
दोनों के बीच
खड़ी हो जाती है
एक गहरी और
लंबी सोच की दीवार
तब नई पीढ़ी को
पुरानी पीढ़ी के साथ
सामंजस्य बिठाना पड़ता है
अपने सही विचारों को
रिश्तों की खातिर
दबाना पड़ता है
समझदारी और धैर्य से
उनकी परिस्थितियों को
समझना पड़ता है
तब कही जाकर
पाटी जाती है
दो पीढ़ियों के
बीच की गहरी खाई।

◆

पता : बी–222, जी.आर.सी. शुभिक्षा,
एम.जे. नगर रोड, चुड़सांद्रा, बैगलुरू–560099
मो. : 9902188600

समरपाल सिंह की दो कविताएं

समरपाल सिंह

लाचार प्रसूता

अरे मनीषो! तुम्हें सुनाऊँ
करूणा भरी कहानी
ढो–ढोकर के ककड़ पत्थर
जिसकी मुरझाई तरूणाई।

कंकड़ों का बोझ सर पर
फटा वसन अबला के तन पर
अनल धधकती अन्तर्मन में
चली जा रही अपनी धुन में।

पीठ बँधी ममता की झोली
झलक रहा ''नवजात'' उसी से
पग–पग बोझ बढ़े जीवन का
''भानु'' प्रताप बढ़ाए अपना।

रोज सबेरे से ढोती कंकड़–पत्थर
राह बनाती गैरों की
''अपने'' की स्मृति भूल गई वह
न्यायहीनता में औरों की।

घाव बनाते कंकड़ कंटक
सूख गये करूणा के आँसू
एक आस है साँझ ढ़रे की
कैसे ''क्षुधा'' मिटे उदर की।

''समर'' व्यथित है देख व्यवस्था
अबला जो सबला कहलाए
सब अधिकार बराबर पाये
अर्ध पगार वह फिर भी पाए।

उड़े पखेरू साँझ पहर के
ऊँचे नील गगन में
उन्हें विलोकि सहसा वह चौंकी
ठिठके पाँव डगर में।

बने लुटेरे सभी वे अपने
तोड़ रहे जो उसके सपने
फटी बिवाई पड़े फफोले
लहूलुहान हैं तलवे उसके।

फेर–फेर में जीवन चलता
स्वांस–स्वांस में उठती आहें
आस–आस में बनें धरौंदे
सरल बनेंगी जीवन राहें।

गोरसहीन हुआ स्तन अबला का
कैसे स्तनपान कराएं
उदराग्नि से तन भी सूखा
कैसे लोरी उसको आए।

करूणा वंदना भरी हुई है
कुठित व्यथित ह्रदय में
हमदर्दी ने किया पलायन
बेदर्दी के खिले चमन में।

सामर्थ्यहीन, वह आसहीन
अवलम्बहीन बेचारी है
प्रसवकाल में करें मजूरी
ये कैसी लाचारी है।

नोटों की दीवारें बनती
रजत भरे कोठे रहते हैं
गिनती करते थकें मशीनें
बिना दूध यहाँ शिशु मरते हैं।

हा! मजबूर मजूर प्रसूता
स्तनपान करा न सकी,
वह सिसक–सिसक बेहाल हुई
शिशु खोकर हतभाग बनी वह।

अनुबन्ध

सुखों की बेला हैं दो चार,
दुःखों के पल हैं कई हज़ार,
प्रधान हैं उनके ये किरदार
इन्हीं से जीवन है बेहाल,
शूल भी जीवन में अनमोल।

जिन्हें हम रहे हमेशा परख,
विडम्बना रब की है कुछ भिन्न
किया नहीं अपनों से कुछ भाव
हमेशा सहे उन्हीं के व्यंग्य,
बनाते जीवन को बदरंग

विवशता से है उनका संग,
सुनाना पीड़ा है सब व्यर्थ,
ज्ञात नहिं उनको कुछ भी अर्थ
भाग्य का उलझा हुआ रहस्य,
उसी ने पूँछा ऐसा प्रश्न।

उकेरे ह्रद–पट पर दुःख चिन्ह,
त्यागते क्यों नहीं उनका मोह
यही क्या इस जीवन का लक्ष्य
भाग्य की रेखा है कुछ वक्र
इसी से चलता जीवन चक्र।

हार से जीत, जीत से हार
यही जीवन का जटिल रहस्य
अन्त में 'शाश्वत' हार है सत्य
पुराणों का यह तथ्य अनन्य
जगत में बाज़ारू सम्बन्ध।

स्वार्थ में जीते हैं, सब लोग
भोगते सम्बन्धों के भोग
बिगड़ते बनते हैं सम्बन्ध,
टूटते नैतिकता के बन्ध
उन्हीं के दुर्बल हैं अनुबन्ध।

◆

पता : पिदौरा रोड मारहरा, एटा
मो. : 9456037283

फ़िराक़ की शायरी

❑ शकील सिद्दीकी

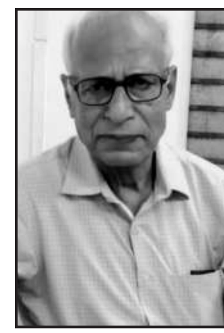

समीक्षा पुस्तक पूरी बीसवीं सदी पर छाये रहे अति–चर्चित शायर फ़िराक़ गोरखपुरी की शायरी प्रोफ़ेसर अफ़ग़ान उल्लाह ख़ाँ के शोध प्रबन्ध का हिन्दी अनुवाद है। कुछ पाठकों को अजीब लग सकता है कि उर्दू भाषा के एक शायर पर और उसकी शताब्दी पर किये गये शोध प्रबन्ध के हिन्दी अनुवाद की हिन्दी में समीक्षा का क्या तुक है। तुक है तभी यह समीक्षा लिखी गयी है। एक व्यक्ति तथा उसके कृतित्व पर शोध सीमाओं में बंधी एक रैखिक रचना प्रक्रिया नहीं होती, वह कई आयाम ग्रहण करती है। एक ओर रघुपति सहाय जैसे थोड़ा जटिल बहुरंगी शायर की शायरी पर उनके एक प्रतिभावान कुशाग्र प्रशंसक द्वारा उन पर शोध प्रबन्ध लिखना और फिर गोरखपुर विश्वविद्यालय के ही उर्दू विभाग के सुविख्यात लेखक, सम्पादक डॉ. वज़ाहत हुसैन रिज़वी द्वारा उसका हिन्दी अनुवाद करना और अनुवाद भी ऐसा जैसे किसी कुशल सिद्धहस्त अनुवादक ने यह काम किया जो, जबकि वज़ाहत हुसैन रिज़वी उर्दू के गहरे तक जमे हुए साहित्यकार हैं। अनुवाद उन्होंने कम ही किये हैं। पुस्तक को पढ़ते हुए यह तथ्य खुलता जाता है कि एक चिंतनशीलन बहुपर्ती कभी रसिक–कभी दार्शनिक भंगिमा देते शायर के व्यक्तित्व एवम् कृतित्व पर आधारित इस शोध पुस्तक का हिन्दी अनुवाद कितना अपेक्षित व आवश्यक था। अफ़ग़ानुल्लाह ख़ाँ साहब का शोध फ़िराक़ साहब के व्यक्तित्व व शायरी में रूचि रखने वाले सभी भाषाओं के पाठकों के लिए ज्ञान के नये वातायन खोलता है।

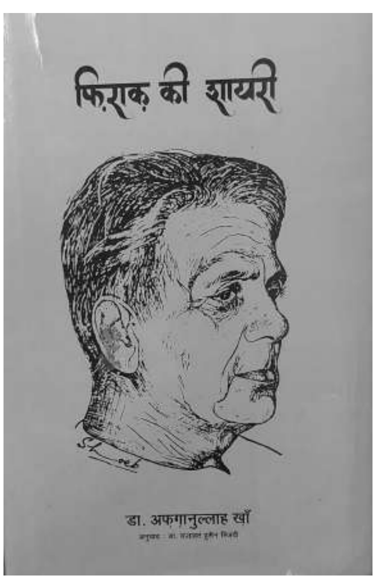

किसी भी कृति के एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद की न केवल यह ज़रूरी शर्त होती है कि अनुवादक की दोनों भाषाओं में अच्छी पकड़ हो, बल्कि सम्बन्धित विषय के बारे में भी उसकी अच्छी जानकारी हो। यह अनुवाद तो अपने छात्र से एक प्रोफ़ेसर द्वारा प्रकट की गयी इच्छा का फल है। तात्पर्य यह है कि प्रोफ़ेसर अफ़ग़ानुल्लाह ख़ाँ जो स्वयं भी बहुआयामी व्यक्तित्व के स्वामी तथा अनेकानेक खूबियों से समृद्ध थे, उनकी हार्दिक इच्छा थी कि उनका शोध–प्रबन्ध जो उर्दू में था, उसका हिन्दी अनुवाद उनके प्रिय शिष्य वज़ाहत हुसैन रिज़वी करें। वज़ाहत हुसैन ने भी गुरू की इच्छा को उनका आदेश मानकर शिष्यगत नैतिकता से बंधकर इस काम को कठिन परिश्रम से संभव कर दिखाया। जबकि वज़ाहत ने उर्दू से हिन्दी

में अनुवाद का काम बहुत कम किया। उनका ओढ़ना बिछौना है उर्दू में, उन्होंने महत्वपूर्ण काम किया है। हिन्दी में उनकी उर्दू जैसी गति भी नहीं है। ऐसे में अनुवाद को शब्दकोशीय होने से बचाने की कठिन चुनौती उनके सामने थी। फिर भी वह कठिनाइयों की खाइयां और खांचे लांघ पाने में कामयाब रहे। भारतीय सौन्दर्यशास्त्र, चिन्तन परम्परा तथा अंग्रेज़ी कविता के फ़िराक़ की शायरी पर गहरे प्रभाव ने लक्ष्य को अधिक चुनौतीपूर्ण बनाया।

''फ़िराक़ के दृष्टिकोण और शेरी सहयोगियों की समीक्षा करने के बाद यह निष्कर्ष बड़ी आसानी से निकाला जा सकता है कि उनकी शायरी न केवल मीर और ग़ालिब की शायरी से काफ़ी भिन्न और विशिष्ट है, अपितु स्वयं उनके समकालीन शायरों, असग़र, फ़ानी, हसरत और जिगर आदि की अपेक्षा आधिक नवीन प्रतीत होती है।'' पृष्ठ 274

इसी प्रकार नये चिन्तन व दृष्टिकोण से ओतप्रोत मिर्ज़ा ग़ालिब की ग़ज़लगोई के प्रति उनके बाद की शायर पीढ़ी के व्यवहार के बारे में अफ़ग़ानुल्लाह ख़ाँ की टिप्पणी का अनुवाद वज़ाहत हुसैन रिज़वी इस ख़ूबी से करते हैं कि वह अनवुाद प्रतीत ही नहीं होता।

''ग़ालिब की शायरी उनके बाद आने वाली पीढ़ी के लिये प्रकाश स्तंभ की तरह है। नये शायर ग़ालिब से लाभ उठा सकते थे, इस प्रकार उर्दू ग़ज़ल की परम्परा में क्रान्तिकारी परिवर्तन आते, लेकिन बाद को आने वाले शायरों ने किसी सीमा तक ग़ालिब की पैरवी तो की, मगर उन्होंने ग़ालिब के शेरी (काव्य) दृष्टिकोण को नहीं समझा। अगर वह समझ गये होते कि अच्छी शायरी या बड़ी शायरी की क्या पहचान होती है तो आज उर्दू ग़ज़ल का इतिहास दूसरा ही होता''। पृष्ठ 275

यहाँ इस तथ्य की ओर ध्यान जाता है कि ग़ालिब और फ़िराक़ दोनों प्रगतिशील आधुनिक चिन्तन से गहराई तक प्रभावित थे। सामंतवादी जीवनशैली की कुछ छवियों के बावजूद इसे संयोग नहीं मानना चाहिए कि प्रोफ़ेसर अफ़ग़ानुल्लाह ख़ाँ भी उसी चिन्तन पद्धति में तपे हुए थे। ऐसे में उनके लम्बे सान्निध्य में वज़ाहत हुसैन रिज़वी पर इस तपन का असर पड़ना ही था।

उर्दू–हिन्दी भाषाओं के मध्य अनेक समानताओं के बावजूद दोनों की आलोचना शब्दावली बहुत भिन्न और कठिन है। अनुवाद में कठिनाइयों की रूकावटों की टकराहटें तो कहीं–कहीं महसूस होती हैं, परन्तु वह अनुवाद की स्थाई चरित्र नहीं बन पायी है।

गोरखपुर का साहित्यिक परिदृष्य शोध ग्रन्थ का अपेक्षाकृत महत्वपूर्ण अध्याय है। वज़ाहत ने जानकारियों से भरे इस अध्याय को अपने भाषाई कौशल से जीवन्त बना दिया है। जैसे कि उनकी शायरी पर हिन्दी काव्य व अंग्रेज़ी शायरी के प्रभाव का उल्लेख हिन्दी रूपान्तरण।

''इसमें किसी प्रकार का कोई सन्देह नहीं कि फ़िराक़ के शेरीमानक के निर्माण पर हिन्दुस्तानी कल्चर व समाज, हिन्दू धर्म और दर्शन और दूसरी हिन्दुस्तानी परम्पराओं का गहरा प्रभाव है। हिन्दुस्तान की पुरानी पुस्तकों में प्रकृति की अभिव्यक्तियों को भगवान की लीला बताये बिना पवित्रता व शुद्धता का आभास दिलाया गया। पृष्ठ 143

इसी क्रम में देखें तो फ़िराक़ की शायरी का रोचक तथा महत्वपूर्ण अध्याय उनकी रूबाइयां भी हैं।

''फ़िराक़ की रूबाइयों की इसी पृष्ठिभूमि और वातावरण ने उनकी रूबाइयों को हिन्दू संस्कृति और सामाजिक जीवन से निकट कर दिया है। जो उर्दू तो क्या हिन्दी शायरी में भी नज़र नहीं आती। इसलिए फ़िराक़ की इन रूबाइयों को घर–आँगन की शायरी के नाम से याद किया जाता है।'' पृष्ठ 353

कहने की आवश्यकता नहीं कि बेहतर अनुवाद के लिए अनुवाद की जा रही कृति की भीतरी तहों तक उतरना आवश्यक है, डॉ. वज़ाहत हुसैन रिज़वी संयोग से नहीं यत्नपूर्वक ऐसा कर पाये हैं। आशा की जा सकती है कि हिन्दी पाठकों को वज़ाहत की यह कोशिश पसन्द आयेगी। ◆

किताब – फिराक की शायरी
अनुवादक – वज़ाहत रिज़वी
पृष्ठ – 506
मूल्य – 500 रुपये
प्रकाशक– डॉ. अफगानहलाह खां मेमोरियल सोसायटी, गोरखपुर,
लेखक – डॉ. अफगानुल्लाह ख़ाँ

पता : 207, वी.सी.सी. ग्रेविटी टिकैतराय,
राजाजीपुरम, लखनऊ–226017
मो. : 9839123525

सुशान्त सुप्रिय की कविता

जा कर भी
यहीं रहूँगा मैं
किसी–न–किसी रूप में

किसी प्रिय की स्मृति में
बसा रहूँगा जीवन भर
अपना बन कर

किसी पुस्तक के पन्नों में
पड़ा रहूँगा बरसों तक
हाशिए की टिप्पणी बन कर

किसी पेड़ के तने में
अमिट रहूँगा
दिल का निशान बन कर

किसी कपड़े की तहों में
बचा रहूँगा सुरक्षित
एक परिचित गंध बन कर

या हो सकता है
बन जाऊँ मैं –
किसी थके मजदूर
की आँखों में
गहरी नींद

किसी मासूम बच्ची
के होठों पर
एक निश्छल मुस्कान ...

कहा न
जा कर भी
यहीं रहूँगा मैं

◆

पता : ए–5001, गौड़ ग्रीन सिटी, वैभव खंड,
इंदिरापुरम, गाजियाबाद–201014 (उ. प्र.)
मो. : 8512070086

भारत सरकार के रजिस्ट्रार आफ न्यूज पेपर्स की रजिस्ट्री संख्या 33122/78
भारतीय डाक विभाग की डाक पंजीयन संख्या–एल.डब्लू./एन.पी. 432/2006

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश

प्रमुख प्रकाशन

उत्तर प्रदेश मासिक	:	समकालीन साहित्य, संस्कृति, कला और विचार की मासिक पत्रिका समूल्य उपलब्ध एक अंक रु. 15/– मात्र, वार्षिक मूल्य रु. 180/– मात्र।
नया दौर (उर्दू)	:	सांस्कृतिक एवं साहित्यिक विषय की एक उर्दू मासिक पत्रिका, एक अंक रु. 15/– मात्र, वार्षिक मूल्य रु. 180/– मात्र।
वार्षिकी (हिन्दी/अंग्रेजी)	:	उत्तर प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों के विस्तृत आंकड़ों एवं सूचनाओं का वार्षिक विवरण मूल्य रु. 325/– मात्र।

महत्वपूर्ण प्रकाशनों के लिए सम्पर्क करें

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र.
दीनदयाल उपाध्याय सूचना परिसर, पार्क रोड, लखनऊ
उत्तर प्रदेश के समस्त जिला सूचना कार्यालय

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. स्वत्वाधिकारी के लिए शिशिर, निदेशक, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. लखनऊ द्वारा प्रकाशित तथा प्रकाश पैकेजर्स, लखनऊ में मुद्रित